

**DUE DATE SLIP****GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

# प्राचीन-पद्य-प्रसून

संपादक

डा० फतहसिंह

चौर

श्री "मधुव्रत"

प्रकाशक

संस्कृत-सदन

कोटा

## ❀ विषय-सूची ❀

भूमिदा	...	...	४
२—कवीर			१
२—मलिक मुहम्मद जायसी			१४
गोध बादल युद्ध	...	...	१६
३—सूरदास			२५
कृष्ण की बाल-लीला	...	...	३१
अमर गीत	...	...	३५
विनय के पद	...	...	४०
४—तुलसीदास			४४
राम-नाम महिमा	...	...	४६
विनय के पद	...	...	५३
राम-वनवास	...	...	५८
५—सेनापति			६१
शत्रु बर्षण	...	...	७०
६—भूषण			७७
शियाबी की दान-खानता	...	...	८२
शिया शीर्ष	...	...	८८
दृष्य	...	...	९१
७—धनानन्द			९४
गोदा	...	...	९७
८—सूर्यमल			१०५
दोहा	...	...	१०८
लिख दवाँ	...	...	१११

## कबीर

**परिचय**— कबीर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विचित्रताएँ प्रसिद्ध हैं। सब से अधिक प्रचलित प्रवाद यह है कि ये विघवा ब्राह्मणों के पुत्र थे। वह लोहापसाद के मय से नवजात शिशु की लहरतारा के तालाब के पास फँक दिये। नीम नामक पुलाहा उसे अपने घर उठा लाया और नीम तथा नीम टगलिन ने उसका पालन पोषण किया। यही कारण आगे चलकर कबीरदास हुआ। इन्होंने कई स्थानों पर स्वयं अपने को पुलाहा बतलाया है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि उस समय की पुलाहा जाति मुसलमान नहीं थी, बरन् यह योग भ्रष्ट गृहस्थों का एक समूह था, जो वस्त्र धुनने के व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका चलाता था। कबीर ने भी अपने को मुसलमान नहीं बतलाया है। वे अपने को सदैव 'ना हिन्दू ना मुसलमान' कहते रहे।

कबीर का जन्म काल ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा संवत् १४५६ माना जाता है। कहते हैं कि ये बचपन से ही 'राम राम' बजा करते थे और सभी जमी माघे पर तिहक भी लगा लेते थे। उस समय साधारण जनता पर स्वामी रामानन्द का प्रभाव बहुत अधिक था। कबीर ने भी उनका सिध्य बनने की इच्छा प्रकट की, परन्तु नीच जाति का होने के कारण रामानन्द ने अस्वीकार कर दिया। एक दिन कबीर एक पर रात रहते ही उस घाट की सीढ़ियों पर जा लेटे, जिस पर रामानन्द जी स्नान करने आया करते थे। अंधेरे में रामानन्द जी के पैर की टोकर कबीर को लग गई और वे 'राम राम' कह उठे। कबीर ने इसी की शुरु मंत्र मान लिया और वे अपने को रामानन्द का सिध्य करने लगे।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे। उन्होंने सत्सङ्ग के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दू महात्माओं के अतिरिक्त इन्होंने मुसलमान सूफी सन्तों का समागम भी किया था, पर इन पर सबसे अधिक प्रभाव रामानन्द जी के उपदेशों का ही पड़ा। इन्होंने 'कबीर-ग्रन्थ' नाम से अपना स्वतंत्र मत स्थापित किया, जिसके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग हुए।

**ग्रन्थ—** कबीर ने ग्रन्थ रचना की दृष्टि से कोई पुस्तक नहीं लिखी। अपने मत का प्रचार तथा सिद्धांतों की पुष्टि करने के लिए ये छोटे बुद्धिगणों को कहते थे, उसे उनके पढ़े लिखे शिष्य लिख लेते थे। इस प्रकार इनके प्रधान शिष्य चर्मदास ने इनकी 'दासियाँ' का सङ्ग्रह 'बीजक' नाम से किया। इसके तीन भाग हैं रस नो, सन्द और सोली। इसमें येशत तत्व, हिन्दू मुसलमानों को पदकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, मूर्ति पूजा, तीर्थाटन आदि की अछातरता आदि अनेक प्रसंग हैं।

**कबीर मत—** कबीर बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने देखा कि इस्लाम धर्म की कट्टरता के कारण हिन्दुओं का हृदय मुसलमानों से निरंतर दूर रहता जा रहा है। अब मुसलमान भारत के निवासी हो गये हैं। दोनों जातियों का विरोध दूर होने की आवश्यकता थी। विरोध को मिटाने का एक मात्र साधन दोनों धर्मों की एकता ही हो सकती थी। अतः कबीर ने ऐसे पथ की स्थापना की, जिसमें तत्कालीन सभी मतों और धर्मों के तत्वों का समावेश था। उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद, सूफियों का रहस्यवाद, नाथ पंथियों का हठयोग, वैष्णवों का अद्वैतवाद और मुसलमानों का एकरूपवाद—इन सब को मिलाकर कबीर-पंथ खड़ा किया।

कबीर ने निर्गुण की उपासना पर जोर दिया। उनके अनुसार ब्रह्म निर्गुण और समुद्र से परे है। पर उपासना के क्षेत्र में ब्रह्म में गुणों का आरोप हो ही जाता है। इसी लिए कबीर के श्रवणों में कहीं तो

निर्गुण ब्रह्म तथा क संकेत मिलना है और कहीं सोनाधि ईश्वर की भक्तक । कबीर-मत में गुह का बड़ा उँचा स्थान है । गुह के द्वारा ही ब्रह्म का ज्ञान जाता है, अतः गुह का 'गविन्द' से भी उँहा माना गया है । माया, जीव, ब्रह्म, तत्त्वमास इत्यादि का परिचय इन्होंने हिन्दू महात्माओं के संपर्क से प्राप्त किया और इनको अपने मत में स्थान दिया ।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए दृढयोगियों को इडा, रिङ्गना और सुपुम्ना नादियाँ; पट्टवरु और कुण्डनिनी को भाव्य करने की विचार धारा इन्हें नाथों की परम्परा से प्राप्त हुई । रिङ्ग में 'ब्रह्माण्ड' की भावना का प्रचार इन्होंने नाथों की शब्दावली में ही किया । सूक्तियों के प्रेमत्व का समावेश करके इन्होंने अपने सिद्धांतों को सत्ता से बहुत कुछ बचा लिया ।

कबीर-मत को इसीलिए हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के मनुष्यों ने माना, पर हिंदुओं में विद्वान शास्त्रज्ञ ब्राह्मण तथा मुसलमानों के मुन्ना-भोलवी सदैव उनका विरोध करते रहे । कबीर-संप्रदाय में धर्म के वे गूढ़ तत्व नहीं मिलते जो नाना शास्त्रों के अध्ययन स्वरूप प्राप्त हो सकते हैं । उनमें सब मतों को मुनी-मुनाई बातों के आधार पर केवल उन्हीं सिद्धांतों का समावेश किया गया है, जो प्रपद या कव पढ़े लोगों को आकर्षित कर सकते थे । इसीलिए इनके मतानुयायी निम्न जातियों के साधारण पढ़े लिखे लोग ही मिलते हैं ।

**समाज सुधारक कबीर**—कबीर ने तत्कालीन समाज प्रचलित मतों से कुछ न कुछ लेकर नई एक सामान्य पंथ का नारा डाला और सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों को समान लाने का प्रयत्न किया; वहा उन्होंने दोनों जातियों का स्टेपिया और अथ विरहाता का भी मिश्रण का प्रयत्न किया । धर्म के मार्ग में उन्हें नाथ यादधर पसंद नहीं था । भोले-भाले धर्म भास लोगों को अधानुकरण करने का आशा देने वाले पंडितों और मातधिरा क वे सदैव शत्रु रहे । उन्होंने एक और हिंदुओं

का मूर्ति पूजा का खण्डन किना, दूसरी ओर मुसलमानों को दिशा-श्रुति के निचे कटकार बनाई। कदाचित उनका अनुमान था कि मुसलमान मूर्ति पूजा के ओर हिंदू हिंसा के विरोधी हैं। अतः दोनों जातियों में से उक्त दोनों विश्वासा को निकाल देने पर एकता का काम सरल हो जायगा।

जाति-पाँति के भेद-भाव के ये कट्टर विरोधी थे। यद्यपि इस उदारता का अंकुर इनके हृदय में स्वामी रामानन्द जी के उरदेशों तथा कापों से ही जम गया था, तथापि इन्होंने उने ओर भी विकसित करके सब जातियों के लोगों को अरथा उरदेश दिया और सभी को अपनी शिष्य-मण्डली में सम्मिलित किया।

**कबीर का रहस्यवाद**—गुह्य या रहस्य की भावना कबीर ने नायों से प्राप्त की। निर्गुण की उपासना में रहस्य भावना का आबाना स्वामाविक है। भक्ति के क्षेत्र में तो भक्त ब्रह्म के साकार रूप का अपनी इन्द्रियाँ से अनुभव कर सकता है, पर उपासना-क्षेत्र में उसका ऐसे ब्रह्म से काम पड़ता है, जिसके न शीष हैं, न पैर, न रूप, न आकार। उपासक या साधक के लिए वह अतीम एक रहस्य ही बना रहता है। भारतीय दर्शन की अद्वैत की भावना ने कबीर जैसे संतों के हाथों में पड़कर रहस्यवाद का रूप धारण किया। रहस्यवाद का मुख्य तत्व जीव और ब्रह्म का एकता है। जब तक भाव का ब्रह्म की अनुभूति, वादात्म्य या साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक वह उसके विरह में छुट पत्रता रहता है। यह विरह-वेदना बितनी तीव्र होती है, उतनी ही तीव्र ब्रह्म की अनुभूति का सम्भवना होती है। भाँय का निरह-वेदना तभी होती है, जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि यह ब्रह्म का ही शरीर या पुत्र है और उसका चरम लक्ष्य उसका प्राप्त करना है। कबीर के मतानुसार यह प्रश्न के शान की प्रतीति बगाने वाला 'छरगुह' है। यह प्रश्न छरगुह के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सब ब्रह्म के विरह में

व्याकुलता से श्रम उठे रक्त की अनुभूति होती है। अनुभूति का आनन्द अत्रणनीय और अस्मरनीय होता है। कबीर के शब्दों में यह 'गूंगे का गुड़' है। साधक उग्रक म्माद को वर्णन नहीं कर सकता। आनन्द ही अन्विते से साधारण स्थिति में आने के पश्चात् स्वयं साधक भी अपनी अनुभूति को रहस्य ही मान सकता है और उक्त वर्णन न कर करने के कारण सर्व साधारण के लिए यह साधक भी रहस्यमय हो जाता है।

कबीर ने उग्र रहस्य को प्रकट करने के लिए म्पवा का आश्रय लिया। यद्यपि उस अतीतिक अनुभूति का वर्णन लौकिक शब्दों में करना अत्यन्त कठिन होता है, तथापि रूपा के द्वारा कबीर ने उसका आभास मात्र देने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि कबीर के रूपक साधारण लोगों के लिए बड़ा हास्य है।

भाषा और शैली — कबीर ने उत्तरी भारत में घूम-घूम कर प्रचार किया, इसलिए कई प्रायः भाषाओं के शब्द इनकी 'भाषी' में मिलते हैं। पञ्जाबी, रजस्थानी, पूर्वी मराठी का इन पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। अथर्व 'मन्त्र' शुक्ल ने इनकी भाषा को 'तपुःकवी' कहा है। व्याकरण और उदर सास्त्र की दृष्टि से इनकी रचना टोपपूर्ण है। अरुट होने के कारण यह स्वाभाविक भी है। फिर भी इनका प्रभाव अपने शिक्षा और आश्रितों पर प्रसार के लोगों पर है।



## कवीर

—: दोहे :—

कवीर डग मग क्या कराई, कइ जुजवहि जीठ ।  
रुख सूत्र को नाइ को, राम नाम रस पीठ ॥ १ ॥

कवीर सब ते हम बुरे, हम तजि भलो धनु कोई ।  
जिनि पेसा करि धूमिया, सोतु हमारा सोई ॥ २ ॥

कवीर सोई मारि यै, जिह मूयै सुल होइ ।  
भलो भलो धनु को कहे, बुते न मानै छोइ ॥ ३ ॥

संत मुए क्या रोइयै, जो अपने मिहि जाइ ।  
रोवहु साकतु चापुरो, जो हाटे हाट बिकाय ॥ ४ ॥

कवीर माया होजनी, पवन ऋकोलन हारु ।  
संतहु मातनु खाइया, छादि पीये संसारु ॥ ५ ॥

कवीर माया बोली, मुखि मुखि लाव हाटि ।  
एहु कवीरु ना मुसै, कौनी पारह याट ॥ ६ ॥

जिसु मने ते जग हरे, मेरे मन चानंदु ।  
मने ही ते पाइयै, पूने परमानन्दु ॥ ७ ॥

माता मरवा जग मुआ, मरि भी न जानिया कोय  
पेने मने जो मरे, यहुरि न मने हाय ॥ ८ ॥

कधीर वेडा जरजरा, फूटे छेक हजार ।  
हरये हरये तरि गये, हूये जिन सिर भार ॥ ६ ॥

हाह जरे जिब लाकरी, पेस जरे जिब घासु ।  
इह जगु जरता देखि कै, मयो कधीर उदासु ॥ १० ॥

कधीर गरबु न कीजिए, रंकु न हँसिये कोइ ।  
अजहुँ सु नाव समुद्र महि, क्या जानव क्या होइ ॥ ११ ॥

जो हम जंतु बजावते, टूटि गई सब तार ।  
जंतु विचारा क्या करै, चलै बजावन हार ॥ १२ ॥

जग माँधियौ जिह जेवरी, तिह मति बंधहु कधीर  
जेहेहि आटा जौन जिब, सोनि ममान सरीर ॥ १३ ॥

कधीर सूता क्या करहि, बैठा रहु अरु जागु ।  
जाके संग ते वीजुरा, ताहि के संग जागु ॥ १४ ॥

कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जोरे लाख करोरि ।  
चलती वार न कुछ मिल्यो, लई लँगोटी तोरि ॥ १५ ॥

बैसनी हुआ तो क्या भया, माला मेली चार ।  
षाहरि कं नु वारहा, भीतरि भरी अँगार ॥ १६ ॥

रोडा होइ रहु घाट का, तजि मन न अभिमानु ।  
ऐसा कोई दासु होइ ताहि मिले भगवानु ॥ १७ ॥

रोडा हुआ तो क्या भया, पंथी कछ दुर देइ ।  
ऐसा तेरा दासु है, जिउ धरनी महि खेइ ॥ १८ ॥

खेद हुई तो क्या भया औ उड़ लागे अंग ।  
 हरि हनु ऐसा चाहिये, जिउ पानी सरवग ॥ १६ ॥  
 पानी हुआ तो क्या भया, सींग ताता होइ ।  
 हरिउनु ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥ २० ॥  
 परभाते तारे सिमहि, तित इहि मिमै मरीरु ।  
 ए दुइ आखर ना सिमहि, मोगहि रंहओ कधीरु ॥ २१ ॥  
 जा घर साध न सेविअहि हरि की सेवा नाहि ।  
 ते घर गरघट सारये, भग घसहि तिन मांहि ॥ २२ ॥  
 तूँ तूँ करता तू हुआ, मुक्त मंहि रहा न हूँ ।  
 आया पर धा सिटि गया, जत देगूँ तत तूँ ॥ २३ ॥  
 काया कजली धन भया, मनु नूँजरु मय मंतु ।  
 अंधुम गगानु रतनु हैं, खेवट दिगला मंतु ॥ २४ ॥  
 तरवरु रूपी राम है, फल रूपी धै गु ।  
 छाया रूपी साधु है, नजिया वाद-विष दु ॥ २५ ॥  
 नीके लोइन करि रहत, ते माजन घट मांहि ।  
 मय रस तेनत्र पीव मउ, किभी लग्याव नाहि ॥ २६ ॥  
 वामनु गुरु है अगत का, भगतन धा गुरु नाहि ।  
 अरुम अरुम फ पचि मुग्गा, फारहु देवहु मांहि ॥ २७ ॥  
 कधीरु राने राम बहु पहिये मांहि विदेक ।  
 एक रनेकहु निर्ता गया, एउ उमाना एउ ॥ २८ ॥

गूँगा हुआ पावरा, पहगा हुआ कान ।  
 पावहु ते पिगल भया, मारथा । तगुरु वान ॥ २६ ॥  
 मली भई जो भव परथा, दिशा गई सब भूलि ।  
 ओरा गरि पानी भया, जाइ मिल्यो ठलि कूलि ॥ २७ ॥  
 चकई जस निमि बोल्युं, आइ मिलै परभाति ।  
 जो नर बिल्युरे राम सिध ना दिन मिलै ना राति ॥ २८ ॥

पद

( १ )

साधो सो सत गुरु मोहि भावे ।

सत प्रेम का भर भर प्याला, आप विधे मोहि प्यावे ।  
 परदा दूरि करै आरुन का, ब्रह्म दरस दिखलावे ।  
 जिस दरस में सब लोक दरसै, अनहद सबद सुनावे ।  
 एकहि सब हुरु-दुरा दरलये, मन्द में सुगति समावे ।  
 कहै कबीर ता को मय नाही, निर्नय पद पर सावे ॥

( २ )

मोको कहाँ हूँ देखन्दे, मैं तो तेरे पास में ।  
 ना मैं देबल ना मैं मसजिद ना कायै कलास में ।  
 ना तो कौन क्रिया-कार्य में, नही योग पैराग में ।  
 त्योथी होय तो तुम्है मिलि हौं, पल भर की तोलास में ।  
 कहै कबीर मुनी भाई साधो, सब स्वासों की खास में ॥

( ३ )

रहना नहि वेस बिराना है ।

यह संसार कागद की पु ड्या, घूँट पड़े धुल जाना है ।  
 यह संसार काँट की ब.दी, स्तम्भ पुस्तम्भ मरि जाना है ।  
 यह संसार माँड़ और माँखर, आग लगे बरि जाना है ।  
 कहत कबीर सुनो भाई साधो, सत गुरु नाम ठिकाना है ।

( ४ )

सुबटा हरपत गहु मेरे भाई, तोहि दगाई देत बिलाई ।  
 धीनि बार सूँघे इक दिन में, कबहुं क स्वता रखाई ।  
 या मँखारी मुगध न मानै, सब दुनियाँ सहकाई ।  
 राणा राब रंक को व्यापै, करि-करि भीति सबाई ।  
 कहत कबीर सुनहु रे सुबटा, सबरे हरि सरनाई ।  
 साखौँ माँहि तँ लेत अचानक, काहू न देत दिखाई ॥

( ५ )

माया महा ठगनी हम जानी ।

विरगुन फाँसि लिये कर डोलै, योलै मधुरी वानो ।  
 केसव के कमला होइ बैठी, सिब के भयन भवानी ।  
 पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी ।  
 जोगी के खोगिन होई बैठी, राजा के घर रानी ।  
 काहू के पीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी खानी ।

भक्तन के भक्तिन होइ धैठी, प्रज्ञा के प्रज्ञानी ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी ॥

( ६ )

मेरा तेरा मनु भा कैसे इक होइ रे ।

मैं कहता हौं अखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी ।  
मैं कहता सुरम्बावन हारी, तू राखयो चरमाइ रे ।  
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे ।  
मैं कहता निर्मोशे गहियो, तू जाता है मोही रे ।  
सतगुरुघारा निरमज्ज चाइ, बा मैं काया धोई रे ।  
कहै कबीर सुनो भाई साधो, तब ही बीसा होई रे ॥

( ७ )

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया ।

पाँच तत्त की बती चुनरिया; सोरइ सैं वंद लागे जिया ।  
यह चुनरा मके तैं आई; समुरे में मनुबाँ खोय दिया ।  
मलि मलिघोई दाग न छूटे, शान कोसावुन लाय पिया ।  
कहै कबीर दाग कब छुटिहैं जय साइव अपनाय लिया ।

( ८ )

साधो, देखो जग औराना ।

साँची कहाँ तौ मागन घायें भूँठे जग पतियाना ।  
हिन्दू कहत हैं राम हमारा, सुखजमान रहमाना ।

आपस में शोच लड़े मरतु हैं, मरम कोइ नहिं जाना ।  
 बहुत मिले मोहि नेमी धर्मी, प्राण करें अखनाता ।  
 आतम छाँडि पपाने पूज, निनका योया ज्ञाना ।  
 बहुतक देखे पार औलिया, पढ़े किताब कुराना ।  
 करें मुदीद कबर यतलावें, उनहूँ खुदा न जाना ।  
 हिन्दू की दया, महर तुरकन की दोनों पर से भागी ।  
 यह करे जियह बाँ कटका मोरे आग दोठ पर लागी ।  
 या विधि हँसत चलत हैं हमछो आप कशर्वें स्याना ।  
 कहें कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिबाना ।

( ६ )

नाम-अमल उतरै ना भाई ।

और अमल छिन छिन चडि उतरै, नाम-अमल दिन बढ़े पढाई ।  
 देखत चढे सुनत हिय लागे, सुत किये तन देत घुमाई ।  
 विषत पियाला भये मतबाला, पायो नाम मित्री दुषिनाई ।  
 जो जन नाम-अमल रख चाहा तरगई गनिका सदन कसाई ।  
 कह कबीर गूंगे गुड़ छाया विन रसना का करै पढाई ।

( १० )

धैं दिन कब आवेंगे भाई ।

जा कारन हम देह धरी है मिलि बौ अंगि लगाइ ।  
 हौं जानू जब हिन मिल रेनुं तन मन प्रान समाइ ।  
 या कामना करौ पर पूरन समथे हौ राम राइ ।

१. इ बदामी माघो च हे चतयन रैन विहाइ ।  
 सेज हमारी स्यंघ मई है, जब सोऊँ तब खाइ ।  
 यहु शरद, स दाम की सुनिये, उन की तपनि चुम्माइ ।  
 कहै कबीर मित्रे जे सई, मिलि करि मंगल गाइ ॥

(११)

अपन पौ आप ही विखरो

जैतें सोनडा काँच मन्दिर में भरमउ भूँकि मरो ।  
 जो केहरि वतु निरखि कृप जल प्रतिमा देखि परो ।  
 ऐसंहि मद् गज काटक सिला पर दखनति आनि अरो ।  
 मरकट मुठी खाइ ना विखर घर घर नटव कियो ।  
 कह कबीर लतनी के सुवना टोडि कौने पकरो ।

(१२)

अरे इन दोउन राइ न पाई ।

हिन्दू अपना करे बड़ाई, गागर छुवन न दूँई ।  
 वेश्या के पावन तर जा, यह देखो दिदुआई ।  
 मु लमान के पार श्रीलया, मुर्गी-बुर्गी खाई ।  
 राला केरी बेटो व्याह, परहि में करें सगाई ।  
 बाहर से यह मुर्दा लाये धोय धाय चडवाई ।  
 सब सखियाँ मिलि जेवन बठी, घर मर करे बड़ाई ।  
 हिन्दुन का दिदुआई देखो, तुस्कन को तुरकाई ।  
 कहै कबीर मुनो भाई साधा कौन राइ है जाई ॥



## मलिक मुहम्मद जायसी

जीवन परिचय — जायसी का जन्म उनके 'आलिरी कलाम' के आधार पर सन् १४६२ के लगभग ठहरता है। कवि ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'पदमावत' की कथा का आरम्भ सन् १५२० के लगभग किया था, परंतु उसमें तत्कालीन सम्राट शेरशाह को प्रशंसा मसनवी-परम्परा के अनुकूल कवि ने की है। शेरशाह का राज काल सन् १५४० से आरम्भ होता है। इतने प्रकट होता है कि इस ग्रंथ की रचना एक समय में न होकर आरम्भ करने के १६-२० वर्ष पश्चात् समाप्त हुई थी।

ये जायस के रहने वाले थे। इन्होंने कहा है 'जायस नगर पर म अरयान्। तहाँ आई कवि कोन्ड बलान्।' इससे प्रकट होता है कि ये जायस छोड़ कर चले गये थे। फिर वहीं लौट कर इन्होंने 'पदमावत' की रचना की। कुछ विद्वानों का कहना है कि जायसी किसी और जगह से जायस में आकर बसे थे, पर कई प्रमाणों से यह सत्य नहीं जान पड़ता।

जायसी कुरूप और काने थे। 'मुहम्मद भाई दिशि तजा, एक सरबन एक कान' के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि ये भाई शाल और माएँ कान से बेकार थे। इनके रूप का देवदर शेरशाह के हँसने की बात प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उस समय ब वसी ने 'माहिदा हँसे सि, कि को हर्दि?' कहकर शेरशाह को लजित किया था।

ये मुरस्य किशान के रूप में जायस में रहने थे। आरम्भ से ही बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। कहते हैं कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मदान के नाँचे दरकर, या ऐसी ही किमी दुपटना से मर गये। इससे जायसी बिप्लव हागये घोर कहर होकर मूरने लग गये।

अमेठी के राधा रामसिंह इनका बड़ा सम्मान करते थे। ये निवा-  
मुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में थे। इनके गुरु शेख मुहीउद्दीन थे।  
सैयद अशरफ भी इनके दीक्षा-गुरु कहे जाते हैं। सूफ़ी फकीरों के सिवा  
हिन्दू साधुओं से भी इनका घनिष्ठ सम्पर्क था। हटयोग, वेदान्त, रसायन  
आदि की बहुत सी बातें हिन्दू साधुओं के संसर्ग से ही इन्होंने सीखीं।

ये बड़े माधुक मगवद्मत्त थे। सन्चे मत्त का प्रधान गुण दैन्य  
उनमें पूरा पूरा था। गवोंक्तियों से ये बहुत दूर थे। अपने को सर्वश  
मानकर पंडितों और मौलवियों का तिरस्कार करने की प्रवृत्ति इनमें नहीं  
थी। ये तो अपने को पंडितों का 'पछलग्ना' कहते थे—

“हाँ पंडितन्ह बेर पछलग्ना । बिहु क्किर चला तब ल देई दगा ॥”  
जायसी को सिद्ध योगी मानकर इनके कई शिष्य होगये, जो पदमावत  
को गा-गा कर भीख माँगा करते थे।

ग्रन्थ—जायसी का मृत्युशाल सन् १५४२ के लगभग माना  
जाता है। जायसी द्वारा चित तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं— पदमावत,  
अखरावट और आखिरी कलाम। पदमावत में सूफ़ीमत के सिद्धान्तों के  
आधार पर लौकिक कहानी के द्वारा ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना है।  
अखरावट में वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त सम्बंधी  
तत्वों से मरी चौपाइयाँ बही गई हैं। 'आखिरी कलाम' में 'क्यामत'  
( प्रलय ) का वर्णन है।

सूफ़ीमत—जायसी के काव्य को समझने के लिए सूफ़ी मत के  
सिद्धान्तों को जान लेना आवश्यक है। सूफ़ी एक प्रकार के फकीर होते थे,  
जो बीच और ब्रह्म की एकता के सिद्धान्त को मानकर उस अर्थात् के  
विरुद्ध में मान इबर उबर घूमा करते थे। फारस में ये फकीर मुहम्मद ऊन  
का सबादा पहना करते थे, जिसे सफूत कहते थे। कहते हैं कि इसी से

ये सूफी कह लीये । एक ओर ये इस्लाम के एक्केश्वर वाद को मानते दे दूसरी ओर प्रेम तत्व का समावेश कर ब्रह्म मय होने की भावना करते थे । इसलिए शरर मुसलमान इन्हें मुसलमान नहीं समझते थे । इनके अद्वैत की भावना भारतीय दर्शन के अद्वैतवाद से कुछ मिलती जुलती थी । शंकर वेदल इतना ही था कि भारतीय पदार्त ब्रह्म को पति या पिता रूप में मानकर उपासना करने की आशा देती है, और सूफियों ने ब्रह्म को स्त्री रूप तथा जीव को पुरुष रूप मानकर साधना की । भारतीय दर्शन की 'माया' सूफियों के यहाँ शरर 'शैतान' में परिचित होगई । सूफी मत में प्रेम तत्व की प्रधानता है । विरह की उत्कृष्टता के साथ प्रियतमा (ब्रह्म) की प्राप्ति समंभवत होती जाती है । इसी हिरर सूफी संतों की रचना में विरह वर्णन की प्रमुख रथान है ।

**जायमी का रहस्यवाद**—जायमी या प्रसिद्ध प्रथम पदमावत कवि के सिद्धांतों को कहोटी है । इन्होंने प्रथम के अंत में सारी बहानी के अन्योक्ति बह दिया है और बीच बीच में भी उनका प्रेम वर्णन लौकिक पद से अलौकिक पद की ओर रुवेत करता हुआ जान पड़ता है । रूय संयोग, क्या वियोग, दोनों में कवि ने श्राध्यात्मिक स्वरूप का आभास दिपा है । लौकिक संदर्य का दर्शन करते करते कवि की दृष्टि उठ चरम संदर्य की ओर चली जाती है । कवि ने प्रेम-पदिक रतन केन में सच्चे साधक का स्वरूप दिखाया है । पदमिनी ही चैतन्य स्वरूप परमात्मा है, जिसकी प्राप्ति या मार्ग बताने वाला मुश्ना है । उठ मार्गमें अग्रसर होने से रोहने वाली नागमती साधारिक संजाल है । साधक चेतन चैतान है, जो प्रेम का ठीक मार्ग न बतला पर रूप उपर भटवाता है । अलोडर्शन मार्ग स्वरूप है । इठ प्रकार सारी बहानी से ईश्वरसोमुग प्रेम की संभना होती है । यह प्रेम संभना निर्गुण और अर्नान्द्रिय के प्रांग होने के कारण रहस्यवाद की बोटि में आती है । जायमी का रहस्यवाद शरीर के रहस्यवाद की भाँत रूय और इठयोगिनी की तरह साधनात्मक नहीं है ।

प्रेम और विरह की प्रधानता होने के कारण उसमें माधुर्य और सरसता का समावेश है। जायसी शान मार्गों संतों की भाँति ब्रह्म की प्राप्ति के लिए समाधि और प्राणायाम की व्यवस्था नहीं देते, बल्कि प्रेम की प्रगाढ़ता पर बल देते हैं। उनके साधक को परम लक्ष्य की प्राप्ति में अनेक बाधाएँ हैं, किन्तु उसका अटल और निश्चल प्रेम उसे उसके ध्येय पर पहुँचा ही देता है।

जायसी में रहस्यवाद का स्फुरण पूरा-पूरा हुआ है। कबीर पर इस्लाम के कट्टर ऐकेश्वरवाद और वेदात के मायावाद का रूखा संस्कार था। उनमें प्रकृति के प्रसार में भगवान के दर्शन करने वाली भावुकता नहीं थी। अतः कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है, वह भावुक कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में जायसी ही ऐसे हैं, जिनका रहस्यवाद रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है और जिसमें भावुकता बहुत ही उत्कृष्ट की है।

**काव्य-विशेषता**—आध्यात्मिकता के आवरण को हटाकर यदि जायसी के काव्य को देखें तो वह शुद्ध प्रेम काव्य के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिसमें संभोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के गृहकार के भेदों का पूर्णतया सन्निवेश मिलता है। अन्य भक्त कवियों की भाँति जायसी ने संभोग गृहकार या उतना विशद वर्णन नहीं किया, जितना वियोग का। जायसी का विरह वर्णन कहीं कहीं अत्युक्ति पूर्ण होने पर भी मन्नाक की सीमा तक नहीं पहुँचने पाया है, उसमें गाभीर्य बना हुआ है। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय वस्तु है। उसके विरह से पशु-पक्षी, पेड़-पल्लव सब व्याकुल हैं। यहाँ तक कि एक पक्षी से तो रहा नहीं जाता और वह नागमती से उसके दुःख का कारण पूछ बैठता है। विरह की ऐसी उत्पत्ता, जिसमें अक-चेतन सब अपने होकर सहानुभूति प्रदर्शित करने लगें और विरही अपना हृदय खोलकर उनके सामने रखे लग जाय, जायसी के ही काव्य में मिलती है अन्यत्र नहीं।

शृङ्गार की प्रधानता के साथ जादसी के काव्य में अन्य भाषों और रसों का भी समावेश है। गोरु बाटल के युद्ध वर्णन के द्वाग वीररस की व्यञ्जना भी कवि ने की है। शूलो की चमक और भनकीर, हाथियों की रेल-पेल आदि का वर्णन उसमें मिलता है।

**भाषा-शैली**—कबीर ने अपना प्रसिद्ध काव्य पदमावत तथा शेष दो काव्य दोहा और चौपाइयों में लिखे। इन्होंने सात सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहा रक्ता है। प्रबंध-काव्य के लिए चौपाई और दोहा बितने उपयुक्त छंद हैं, यह इसी से सिद्ध हो जाता है कि आगे चलकर महाकवि तुलसीदासजी ने अपना प्रसिद्ध काव्य रामचरित मानस इसी शैली में लिखा।

जायसी ने अरबी भाषा में काव्य-रचना की। जायसी अधिक पदे लिखे नहीं थे। अतः उनकी भाषा में ठेठ अरबी के दर्शन होते हैं। कई शब्दों के तत्कालीन रूप छान अरबी भाषा से निकल चुके हैं। इसी से उनके काव्य हिन्दी साहित्य में देर से प्रकाश में आये। अरबी भाषा और चौपाई छंद का संबंध जायसी के द्वारा ऐसा घनिष्ठ हो गया कि तुलसी ने भी अरबी भाषा को ही अपने 'मानस' की भाषा बनाया। यह दूसरी बात है कि तुलसी की भाषा, जायसी की अपेक्षा साहित्यिक अधिक थी।

# मालिक मुहम्मद जायसी

## गोरा-बादल युद्ध

सोरह से चंडोल सँवारे । कुँवर सँजोइल कै बैठा रे ॥

पद्मावति कर सत्रा विवानू । बैठ लोहार न जानै भानू ॥

रवि विवान सो साजि सँवारा । चहुँ दिश घँवर करहि सब ढारा ॥

साजि सवै चंडोल चत्तापे । सुरंग, ओझार, मोती बहु लापे ॥

भए सँग गोरा बादल बजी । कहत चले पद्मावति चली ॥

हीरा रतन पदारथ भूजहि । देखो विवान देवता भूजहि ॥

सोरह से सँग चली सहेली । कँवल न रहा, और को बेली

राजहि चली छोड़ावै । तहँ रानी होइ ओल ॥

तीस सहस्र तुरि लिची संग, सोरह से चंडोल ॥

राजा घँदि जेहि के सौँवना । गा गौरा तेहि पहुँ अगमना

टका लाए दस दीन्ह अँकोरा । बिनती कीन्हि पाँप गहि गोरा ॥

बिनवा बादशाह सीं जाई । थप रानी पद्मावति आई ॥

बिनती करे भाइ हाँ दिल्ली । बिन वर के मोहिं स्यों है किरली ॥

बिनती करे जहाँ है पूँजो । सब मँडार के मोहिं स्यों कूँजो ॥

एक धरी जो अज्ञा पावौं । राजहिं पाँपे मंदिर मई आवौं ॥

तय रगवार गए सुतवानो । देखि अँकार भए जस पाती ॥

जाइ साह आगे सिर नावा । रजग नूर चांद चलि आवा ॥

जावत हैं सब नखत तराई । सारह स चंडोल सो आई ॥

चित्त उर जैति राज के पूंजी । लेइ सो आइ पद्मावति कुंजी ॥  
 बिनती करै जोरि कर सरी । लेइ सौंपो राजा एक घरी ॥

इहाँ चहाँ कर स्वामी, दुऔ जगत मोहि आस ॥

पहले दरस देखावहु, तौ पठयहु कविलास ॥

आशा भई, जाइ एक घरी । छुँछि जो घरी फेरि विधि भरी ॥

बलि विधान राजा पहुँ आषा । संव चंदोल जगत सप्त द्वाषा ॥

पद्मावति के भेष लोहार निकसि काटि बाँदि कीन्ह जोहार ॥

उठा कोवि जस छूटा राजा, चढा तुरंत, सिव अस गाजा ॥

गोरा बादल खाँटे काँटे । निकसि कुँवर चाँद, र भए ठाँटे ॥

ठीस्य तुरंग गगन खिर लागी । केहुँ जुगति करि टेकी याजा ॥

जो निज ऊपर सङ्ग सँभारा । मरन हार सो सङ्गन मारा ॥

भई पुकार साइ सौं, सखि औ नरवत सो नाहि ।

हर के गहन गराषा, गहन गरासे नाहि ॥

लेइ राजा बितर करै चले । छूटेव सिव मिरिग मरत मते ॥

बदा साहि, चदि कागि गोहारी । कटक असुक्त परी अग कारी ॥

फिरि गोरा बादल सौं कदा । गहन छूटि पुनि चाहे गदा ॥

चहुँ दिख आवे लोपत भान् । अब इहे गोइ, इहे मैदान् ।

तुई अब राजहि लेइ बनु गोरा । हीं अब उरति जुरीं भा जोरा ॥

बइ शौगान तुरक कस रेखा । होइ रेखार रन जुरीं अकेषा ॥

तो पाबौ बादल अस नाई, ओ मैदान गोइ लेइ जाई ॥

आजु सङ्ग शौगान गहि, करौ घोष-गिणु गोइ ।

देखौ सौंइ साइ सौं, राज जगत मंड होइ ॥

तब अगमन होइ गोरा मित्रा तुइ राजहि लेइ चलु बादला ॥  
 मित्रा मेरे जो सँकरे साया मिचुन देइ पूठ के माया ॥  
 मैं अब आउ भरी औ मूर्जी। का पञ्चिनाव आइ जो पूँजी ॥  
 बहुतन्ह मारि मरौ जो जूझी। तुम जिनि रोपहु तौ मन घूझी ॥  
 कुँवर सहस्र संग गोरा लोन्हें। और वोर बादल संग कीन्हें ॥  
 गोरहि समदि मेव अम गाजा। घला लिए आगे करि राजा ॥  
 गोरा उजटि खेत भा ठाढ़ा। पूठप देखि चार मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँक।

परति आव जगकारी, होति आव दिन साँक ॥

होइ भेदान परी अब गोइ। खेत हार दहुँ काकर होइ ॥  
 फिरि आगे गोरा तब हाँका। खेतौ, करौं आजु रन साका ॥  
 हौं कहिए घौलागिरि गोरा। रौं न टारे, अंग न मोरा ॥  
 सोहिल जैस गगन उपराही। मेव घटा मोहि देख बिजाही ॥  
 सदसो सीस सेस सम लेखौं। सदसो नेन इन्द्र सम देखौं ॥  
 चारिउ भुजा चतुरभुज आजू। कंस न रहा, और को साजू ? ॥  
 हौं होइ मीम आजु रन गाजा। पाछि घालि डुंगवै राजा ॥  
 होइ हनुमंत अमकातर दाहीं। आजु स्वामि साँकरे निवाहीं ॥

होइ नल-नील आजुहौं, देवँ समुद मँह मँड।

कटक साहकर टेकौं, होइ सुमेरु रन पँड ॥

ओ नई घटा चहुँ दिशि आई। छूटहि धान मेव मरि लाई ॥

ढीले नाहि देव जस आदि। पहुँचे आइ तुरक सब बाढ़ो ॥



हाथन गेह खद्दग हरद्वानो । चमछई सेज वीज के धानी ॥  
 सोम वान जस आवहि गाजा । वासुकि डेरे भीष जनु पाजा ॥  
 नेजा सते डेरे मन इन्दू । आइन बाज जानिके हिन्दू ॥  
 गीरे साथ लीन्ह सब स'यी । जत्र में मंत्र सूँड विनु हायी ॥  
 सब मिलि पहिनि उठौती कीन्हीं । आवत जाइ हॉकरत दोन्ही ॥

रुंड-मुंड अब दूइहि, स्यो धसतर औ फूँड ।

तुरय होई येनु कांवे, हसिा होंहि विनु सूँड ॥

औनवत आइ येन मुत्ततानो । जानहुँ पलप आय तुलानी ॥  
 लोहे सेन सुक सब कारी । विज एक कइ'न सुक उपारी ॥  
 खद्दग कौजाइ तु'क सब कटि । धरे वीजु अरु चमछई ठाढ़े ॥  
 पीलवान गज पेले पांके । जानहुँ काल कएहि दुइ कांके ॥  
 जनु जमकात कएहि सम नवां । जउ लेइ चइहि सग अनसवां ॥  
 सेल सरप जनु चाइहि डबा । लेहि कादि जिउ मुग्र वप वसा ॥  
 तिन्ह सामुहँ गोरा इन कोरा । अंगद सरिस पाँव गुह रोपा ॥

मुपुरुष भागि न जानै, मुँह जो फिरि फिरि लेइ ।

सूर गइ दारु कर, स्वामी काज शिउ देइ ॥

मइ पग भेत, मेन पन पाग । श्री गन पेन, अरु ज सौ गेरा ॥  
 सइम कुँबल सइबी स'वापा । भां रइ'न जूक हर छांवा ॥  
 लाग भरे गात के आगे । पाग न मार-धर मुन लागे ॥  
 जेने पंग स'ग पंति लेइ । एक मुन दून' । उउ देई ॥  
 दुइहि बाज, अरु-धर मार' । जागहि कइहि कव निरै ॥

कोई परहि रुहर होइ राते । कोई धायल घूमहि माते ॥  
कोई गुर खेइ गए भार भोगी । भसम चढाइ परे होइ जोगी ॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेला ।  
जूम्ह-कुंघर सब निरर, गोरा रहा अकेला ।

गोरै देहि साथि सब जूम्हा आपन काल नियर भा वूम्हा ॥  
कोपि सिध सामुं ह रन मेला । लागन्ह सो नाहि मरे अकेला ॥  
लेइ हाँक हास्तन्ह कै ठठा । ज पवन निदरै घटा ॥  
जेहि खिर देइ कोपि करधारु । ग्यो घोड़े दूटे असवारु ॥  
छोटहि सीस कधन्ध निवारै । माठ मजीठ जनहुं रन डारे ॥  
खेलि फाग सें दुर धरकावा, चोचरि खोलि आगि जनु लावा ॥  
हस्ती छोडा घाइ जो घूषा । ताहि कीन्ह सो रुहरि मभूका ॥

भइ अहा सुलतानी, वेगि करहु एहि हाय ।  
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ ॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका । गूलत सिध जाइ रहि टेका ॥  
जेहि दिस चठे सोइ जनु ग्यावा । पलटि सिध तेहि ठाँव न आवा ॥  
तुरक घोलावहि होलै वहाँ । गोरै भीचु घरी खिच माहाँ ॥  
मुए पुनि जूम्हा जाख जग देऊ । जियत न रहा जगत मँह फोऊ ॥  
जिनि जानहुं गोरा छो अकेला । सिध पो मँह हाय को मेला ॥  
सिध निरर नही कापु धरावा । मुए पाछु बोटि घिसियावा ॥  
करे सिध मुन -सौहहि दीठी । दौ रगी जिये देइ नहीं पीठी ॥

रतनसेन जो बांधा, मखि गोरा के गाव ।  
जो लागि रुहिर न भोवौ, तौ लागि होइ न राव ॥

कहे सि अंत अथ भा भुइ परना । अंत तप से खेइ सिर भाना ॥  
कहि कै गरज सिध अस धावा । सरजा सारदूल पँह आवा ॥  
सरजे लीन्ह सांग पर घाऊ । परा रुइग जुनु परा निहाऊ ॥  
वपक सांग, वप ये हांटा । सठी आंग तस याजा रांटा ॥  
जानहु वप वप सौ याजा । सप ही पहा परी अथ गाजा ॥  
दूसर रुइग वध पर दीन्हा । सगजे ओहि ओइन पर लीन्हा ॥  
तीसर रुइग वृंह पर हावा । बांध-गुरज दुल, पावन पाया ॥

तस माया हठि गोरै, ठि वप कै आगि ।  
कोई नियरे नहि आवे, सिध सदूरहि लागि ॥

तव सरजा कोपा बांधा । जनुहुं सदूर पेर मुज दंटा ॥  
कोपि गरज मारेसि ठर बाजा जनुहुं पगे दूटि सिर गाजा ॥  
ठांठर दूट, फूट सिर तासू । स्यो हुमेर जुनु दूट अकासू ॥  
भमाक एठा सब सरग पठारू । फिरि गरं दीठि, किला संसारू ॥  
भई परलय अस सप ही जाना । पाटा रुइग मरग नियराना ॥  
तस मारेसि स्यो पोड़े काटा । घरती पयटि, से । फन पाटा ॥  
जौ अति सिध वरी होइ आरि । सारदूल सौ कोनि बदाई ॥

गोरा पग गंत मँह, गुर पटुंघावा पान ।  
बादल लेइगा रागा, लेइ पितर नियरान ॥

## सूरदास

लैटिन परिचय — सूरदास की वाक्य कला कला, यहाँ कला, ये किस बात के थे और इनके माता पिता वीर थे, आदि बातों का परिचय इसे कला के अन्तर्गत है। वाक्य कला है कि महात्मा लोग स्वयं अपने संबंध में कुछ लिखना उचित नहीं समझते। अमरालीन कवियों या लेखकों के साक्षर के आधार पर ही विद्वान् अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं। उतने के बाद उतना ही ज्ञान होना है कि ये पहले गऊघाट पर रहते थे। बल्लभचार्गी की वैशिष्ट्य होने पर सूरदास आवर रहने लगे।

‘साहित्य-लक्ष्मी’ में सूरदास ने उरदा रचना कोल संवत् १६०७ दिया है। उस समय सूरदासकी ६७ वर्ष के बताये जाते हैं। इस प्रकार इनका जन्म लगभग १५४० मानना होगा। यदि सूरदास की आयु ८०-८५-वर्ष माना जाय तो सूरदास १६२० के आसपास हुई होगी। इसी समय के अन्त में सूर ने अर्धशतक परम्परा दी है, जिसके अनुसार ये चंद्र बरदाई के संतज ब्रह्मचरि सिद्ध होते हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि ‘साहित्य-लक्ष्मी’ में यह पद पौढ़े किसी भाव ने जोड़ दिया है।

सूर के जन्मसमय होने या बाद की अन्धता होने के सम्बन्ध में भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अन्धे होने के कारण ही तोर अन्धता के अनुसार उन्हें ‘सूरदास’ कहने लगे या यही इनका जन्म नाम था। इनके अन्धे होने के सम्बन्ध में कई विचरान्तर्गत प्रमाण हैं। कुछ विद्वान् उक्त जन्मसमय मानते हैं, पर विचरान्तर्गतों के आधार पर इनका जन्म के अन्धता होने सिद्ध होता है। इनकी रचना-दृश्यलता, सूक्ष्म मनोवृत्तियों के विशेषण की कृमता तथा

दर्शनो षीं रज्ज्वदता पर विचार करने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूटास अदृश्य ही साक्षात्क अनुभव पर्याप्त रूप में प्राप्त कर लेने के परचात अन्धे हुए होंगे। किसी बीमारी के कारण इनकी श्रोत्रों गई या अन्य किसी कारण से ये अन्धे होगये, इसकी रिवेचना में पक्षना व्यर्थ है; क्यों कि भिन्न भिन्न बन्धु तिसों इनके अन्धे होने के भिन्न भिन्न कारण बताती हैं।

सूटास जी बलभान्चार्यजी के शिष्य थे। आनादजी ने उन्हें अपनी सेवा में प्रधान स्थान दिया था। बलभान्चार्यजी के पुत्र (द्विदृशनाथ जी) ने पुष्टी मायी षदियों में के लुने हुए आठ प्रन्त षदियों में इनकी परला स्थान दिया था। ये 'छष्ट छाप' के 'सुनेरु' बरलाने थे। सू के अति-मिक्त छष्ट छाप में इन षदियों की रचना है— नटदास, बुभनदास, परानन्ददास, कृष्णदास, हंरलामी, सोब-दलामी और चतुर्भुवदास।

ग्रन्थ—सूटास जी का रचना पाल कवत् १५५६ के लगभग माना जाता है। इनका रचने परला ग्रन्थ 'नल टम्बगत' काव्य था, जो अद्य अप्राप्य है। बलभान्चार्य जी के शिष्य होने के उगन्त इन्होंने अपने प्ररिष्ट ग्रन्थ 'सू सागर' की रचना की। यह ग्रन्थ अमरुमागदत के आधार पर लिटा गया है। षरते है कि इटमें छयालार षद है, किन्तु अभी तक शोज में षेवल षांच-दृ रचार षद ही प्राप्त हुए है। रवा लाग षद लिख चुकने पर 'सू सागर्षली' की रचना हुई और इसमें कुछ षदले सापद 'साहित्य लक्ष्मी' छपकित की गई हो। इन ग्रन्थों के अतिमिक्त ध्यादलो, हरिदंश टोडा, षद समद, दशम रषष टीका और नागर्षीना भी इनकी लिखी हुई बताई जाती है, परन्तु ध्यादलो के अति-मिक्त अन्य पुस्तकें किसी दूसरे सूटास की लिखी हुई मान पड़ती हैं।

भक्ति-भाषना — सू ने विष्णु के अकार कृत्य की रचना उगाव बनाया। ये पुष्टिमयी सादशद के है। इल सादशद में सरेण समरंण

श्रीर भगवान के अनुग्रह पर बड़ा बल दिया जाता है। जब तक भक्त अपने भगवान को सर्वस्व समर्पण नहीं कर देता, श्रीर भगवान उस पर अनुग्रह नहीं करते जब तक वह उनका सन्निध्य-लाभ नहीं कर सकता। गूर की भक्ति तथा भाव ही है इसलिए इनका मन बालकृष्ण तथा गोपकृष्ण की लीलाओं में जितना रमा, उतना कृष्ण के लोकरञ्जक रूप कवियों में नहीं।

भास् पत्त — 'गूर सागर' ही मूरदास जी का प्रमुख काव्य है, जिसके आधार पर मूरदासजी के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। 'गूर सागर' कई हजार पदों का विद्यान संप्रद है। उसमें अनेक रत्न हैं, जो गूर की सहृदयता और भावुकता का परिचय देते हैं, जो गूर की सहृदयता और भावुकता का परिचय देते हैं, परन्तु प्रचलितः कृष्ण की लाल-लीला और भ्रमर-गोत्र ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें गूर की प्रतिमा ने मनो प्रकृति संवर्ण किया है। गूर सागर भ्रमरमागमत का अनुवाद है, पर उसमें कृष्ण का उदात्त लीलाओं के पद विशेष रूप से हैं, जिनमें गूर का मन विशेष रूप से रमा है। भागवत के दशम स्कंध की कथा गूर ने बड़े विस्तार से कही है।

गूर का बाल वर्णन दिन्दी-साहित्य में अपूर्व है। यहाँ तक कहा जाता है कि उग कोटि का जल-वर्णन संगर के किनारे भी साहित्य में नहीं है। परैर ऐक वना में, पर के प्रया न दने न नल का प्रकृति का निजना परिचय हा सकता है उदात्त वा' क' तथा स्व नापिठ वर्णन कृष्ण के लीला में निजता है। यद्योदा का कृष्ण का पलने में भुजाना कृष्ण का अंत मूर्द लेना परन्तु यद्योदा के चुा होने ही जानक कृष्ण का फिर होने लग जाना; कृष्ण का हाथ से पैर का अंगूठा पकड़ कर चूमना, म'त' यद्योदा का अभिचार करना—“कय मेरा लाल सुटवण रंगे, कय घरनी पग डं क परे,” माना यद्योदा के अनुकरण पर दश मथने की हठ करना, आदि अनेक मुन्दर और हृदय हाथों वर्णना में वः प्रसंग

सीमा नहीं रहता। उपर कृष्ण भी गोपियों का स्मरण कर श्रान्त-विमोह हो जाते हैं। उनके गन्ना उड़ता कृष्ण को योग का उरदेश दे कर सम्भाने हैं। उद्धव प्रेम का मादिमा नहीं जानते। कृष्ण उन्हें अपनी ज्ञान गठरी मंत्र में ले जाने की राय देते हैं। उद्धव अपने ज्ञान के दर्प में गोपियों को प्रेम से विरत करने के लिए मंत्र में जाते हैं, परन्तु गोपियों की विरह कातर दशा, दानना, व्यग, विषयता, प्रेमाधिक्य को देख कर अपना साग ज्ञान भूल जाते हैं और प्रेम के रंग में रंग कर मधुग लीटते हैं। 'सू' ने इस भ्रमर गीत में उद्धव और गोपियों के संवाद द्वारा विप्रलम्भ शृङ्गार की अनेक मनोदशाओं का चित्रण अत्यन्त सुन्दर ढंग में किया है। उद्धव के ज्ञानोपदेश के उत्तर में गोपियों के मोले और स्वामानव उत्तर उद्धव को निरुत्तर कर देते हैं:—

‘ऊधो, मन नहीं दस-वीथ।

एक हुतो सो गरी स्थाम सग को श्रायथै इंस १’

कभी गोपियों लीकसर उद्धव को फटकार बताती हैं:—

‘रहिरे, मधुकर। मधु मतचारे।

कदा कर्षे निगुन लैके ही, जीगहु कान्ह हमारे।”

तो कभी उगना उरदास करती हैं:—

‘विजय नै। नानहु, ऊधो प्यारे।

वह मधुग कीजल सो सोडग जेप्र वरि ते मारे।”

कभी कृष्ण प्रेम में विह्वल हो कर पुकार उठती हैं—

‘जसिनी हरि दर्यन की भूली।”

तो कभी कृष्ण की निर्भयता पर दृष्ट होकर अपने को ही काँवने लगती हैं:—

‘अथ मन सुरति होति हे राजन ।

तव अर्थात्तु भई सुन सुरतीं ठगी वपः ना द्वावन ।’

उक्त दोनों वर्णना के कारण ही गूर हिन्दी-साहित्यकारों के रूप बहलाते हैं। गूर के साज में रखा और भावों की विविधता भले ही न मिले पर वात्सल्य-श्रीर शृङ्गार की सम्पूर्ण अन्वृत्तियों का समावेश उसमें इतनी प्रचुरता से है कि ‘तुलसी’ जैसे महाकवि भी इन प्रयोगों के वर्णनों में उनके समकक्ष नहीं टकरते।

दत्तापद्य — गूर में वहाँ शृङ्गार और वात्सल्य की मनोदशाओं की पूर्ण शक्ति थी वहाँ वाग्द-प्रतिभा भी कम न थी। दृष्टवा तथा विपरीत या चित्र अस्तित्व करने के लिए इन्होंने उत्पन्न द्वा, उरमा और रूपक से विशेष ध्यान लिया है। अन्य साधारण अतःकार तो १६-१६ पर विरते निरते हैं।

गूर ने अपने वाक्यों की रचना मरभाषा में की। बिग भाषा में उनके आस-पास चल कृत्य ने मातृमन रोटी मर्गों की, उम भाषा की कृत्य की सीमा का मान करने समर ने जैसे भूज गच्छी के। गूर की मरभाषा साहित्यिक होने हुए भी प्रगाढ़ गुण सुक है। उममें सावासीन मरभाषा के सुन्दरी का प्रयोग मिलता है। उममें प्रगाढ़ के अतिरिक्त मधुर, दृढ़ भी प्रचुरता में है।

गूर की रचना में आस-पास वप की प्रचुरता तथा सौन्दर्य की मृदुता होने के कारण ही कहना है उनके लिए वः दात हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है—

‘गूर गूर गुणों गरी, उदुमन के उदुमन ।

दर के परि कदोः सम, वरें दरे वरिंद प्रकाश ॥



## “सूरदास”

कृष्ण की बाल—लीला

( १ )

जसोदा हरि पालने मुलाये ।

हलरावै दुलराद मलहावै बोई मोई क्यु गावै ॥  
 मेरे लाल को आच निंदरिया काहे न आनि सुनावै ॥  
 तू काहे न वेगिभी आवे तोको कान्ह बुलावै ॥  
 फवहुँ पलक हरि मूँ दि लेत है फवहुँ अधर फा कावै ॥  
 सोषत जान मीन है रहि-रहि करि-करि सेन बनावै ॥  
 इहि अन्तर अष्टलाइ एठे हरि जमुमति मधुरे गावै ॥  
 जो मुग सूर असा मुनि दुल्लभ सो नंद मानिनी पावै ॥

( २ )

कर गहि पग अँसुटा मुग भेजत ।

प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरपि हरपि अपने रंग खेजत ॥  
 सिव सोषत विभि बुद्धि विचारत पाट वाट्यो सागर जल केजत ॥  
 विहरि चले घन प्रलय जानिके दिगपति दिगदंष्ट्रिय न भतेजत ॥  
 मुनि मन भीत भए, भइ कंथित, सेव मकुचि महसो कन फेजत ॥  
 वन मव प सिन पात न जानी, समुझे 'सूर' मरुट पशु पेलत ॥

( ३ )

जसोदा मदन गोपाल मुनावै

देखि सपन गत त्रिभुवन कंज्यो ईस विरंचि भ्रमावै ॥  
 असित असन सित आलस लोचन उगै पलक पर आवै ॥  
 जनु रवि गत संकुचित कमल जुग निसि अलि उड़ न पावै ॥  
 चौकि चौकि हि सु दसा प्रकट करे छवि मन में नहि आवै ॥  
 जानो निसिपति धरि कर अमृत छिति भंडार भावै ॥  
 खास उदर च्छरत यों मानों, दुग्ध सिधु छवि पावै ॥  
 नाभि सरोज प्रगट पदमासन उतरि जाल पद्विनावै ॥  
 कर सिरतर करि श्याम मनोहर अलक अधिक सोभावै  
 'सुरदास' मानो पन्नग पति प्रभु ऊपर पन छावै ।

( ४ )

सोभित कर नवनीत लिए ।

दुग्ध चलत रेनु तनु मंडित मुग्ध दाँध लेप रिये ॥  
 चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक शिरे ।  
 लट लटकनि मनो मत्त मधुप गन मादक मदहि बिये ॥  
 कठुला, कंठ, वज्र, देहरि नख राजत रुचर हिये ।  
 धन्य सूर एकौ पल था सुख, का सत कल्प जिये ॥

( ५ )

कहाँ लौं वरतौं सुन्दर तई ।

खेलत कुँघर कनक आँगन में नैन निरखि दधि छाई ॥  
 मुल्ही लसत सिर श्याम सुराग अति बहुविध रुँग बनाई ॥  
 मानों नव धन ऊपर राजत म्धवा धनुष्य बहाई ॥

अति सुदेख मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख घगटाई ॥  
 मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अबली फिरि आई ॥  
 नील सेत पर पीत लाल मनि लटकन भाल लुनाई ॥  
 सनि गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि मनौ भौम सहित समुदाई ॥  
 दूध दंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत पकु रपमाई ॥  
 किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनौ घन में विञ्जु छपाई ॥  
 संहित बचन देत पून मुख अलप अतर जलपाई ॥  
 छटुरन चलत रेनु तनु भडित 'सूरदास' बलि जाई ।

( ६ )

मथत दधि, मथनी टेकि रख्यो ।

आरि फरत मृदुली गहि मोहन वासुकी संभु बस्थो ।  
 मंदर दुरत सिंधु पुनि फौपत फिरि जानि मयन करे ॥  
 प्रलय होय जनि गइो मथानी विधि मरजाद टरे ।  
 मुर अरि मुर ठाढ़े सब चितवें नैनन नीर दरै ॥  
 'सूरदास' प्रभु मुख जसोदा मुख दधि विनु 'गरी' ।

( ७ )

हरि को बाल रूप अनूप ।

निरखि गई वृज नारि इरुटक थँग अँग प्रति रूप ॥  
 विधुरि अलकें रहि बदन पर बिनहि पवन सुभाइ ।  
 देखि गंजन चंद्र के बस करत मधुप सहाइ ॥

( २ )

तेरो घुरो न कोऊ मानै ।

रम श्री दाम मधुप तीरस मुनु, रसिक हंत सो जाने ।  
 हाटुर वमे निकट कमलनि के जनम न रस पहिचानै ॥  
 अति अनुराग उड़न मन बाँध्य कहाँ मुनत नहीं कने ।  
 सरिता चल मियन सागर को फूल मूल-द्रम भाने ॥  
 कायर बकैं, लोहते भाजे, लरे सा 'सुर' बखने ।

( ३ )

निगुन कौन देस को बासी ।

मधुकर ! हँसि समुझाय सौँइ दे वूमनि साँच न हॉखी ॥  
 को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ।  
 केषो बरन भेख है कसो, केहि रस में अभिजाही ॥  
 ए वगो पुनि कयो आपनो जगरे ! कहैगो गॉसी ।  
 गुनत भौन ह्ये रण्यो ठगयो सो सूर' सबे मति नासी ॥

( ४ )

गिनु गोपाल घोरन भई गुंज १

तव मे लगति अति पीतल, अब भई विषम बवाल की पुंज ॥  
 वृश' इहो जनु गग जोलव, वृया कमल फूलें, भलि गुंजें ।  
 परन, पानि, पत धन, मही गति, दधि सुवर्किले भातु भइ मुजें ॥  
 ये ऊपर रुदिये मानर भों विरह करद कर मारत लुंजें ।  
 'सुरदास' प्रनु को मग बोवत अलिपाँ भइ वरन वयो गुंजें ॥

अति सुदेष मृदु चिकुर दृग्ग मन मोहन मुख घगराई ॥  
 मानो प्रगट फंघ पर मंजुल अलि अवली फिरि आई ॥  
 नील सेत पर पीत लाल मान लटकन भाल लुनाई ॥  
 अति गुरु-अमुर, देव गुरु मिलि मनौ भौम सहित ममुडाई ॥  
 दूध दंत दुति अदि न जाति अति अद्भुत एक वपनाई ॥  
 किलकत हंसत दुरत प्रगटत मनौ घन में विष्णु छपाई ॥  
 स्यांति वचन देन पून गृन् अन्तर अतर जलपाई ।  
 छुटन चलत रेनु वनु भंडित 'सूरदास' बलि जाई ।

( ६ )

मयत दधि, मथनी टंकि लख्यो ।

आरि करत मृदु गी मोहन वामुकी संसु लख्यो ।  
 मंदर दुरत भिधु पुनि कोंपत फिरि जानि मशन करे ॥  
 प्रलय होय जनि गद्दी मथानी विधि मरजाद टरै ।  
 सुर अरि सुर ठाढ़े मय चितवें नैनन नीर दरै ॥  
 'सूरदास' प्रभु मुख जघोश सुख दधि वनु गरै ।

( ७ )

हरि को गुल रूप अनूप

निरति गदि वृज तारि इकटक अंग अंग प्रति रूप ॥  
 विधुनि अलकें रदि वदन पर दिनहि पवन सुभाइ ।  
 देति संजन चंद्र के पस करत मधुप मदाइ

( २ )

तेरो बुरो न कोऊ मानै ।

रस की वान मधुप नीरस सुनु, रसिक हेत सो जानै ।  
दादुर वसे निकट कमलनि के जतम न रस पहिचानै ॥  
अति अनुराग उड़न मन वाँग्य, कह्यो सुनत नही कनै ।  
सरिता चले मिलन सागर को कूल मूल-द्रम भानै ॥  
कायर बरुं, लोहते भाजे, लरे स । 'सूर' बखनै ।

( ३ )

निगुन कौन देस को दासी ।

मधुर ! हँसि समुगाय सौँह दे'वृक्तति साँच न हाँसी ॥  
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ।  
केसो चगन भेष है केसो, केहि रस में अभिजासी ॥  
पःचगो पुनि कयो आपनो जारे ! कहैगो गाँसी ।  
मुनन मौन हो रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सबे मति नासी ॥

( ४ )

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजे ।

तव ये लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजे ।  
वृग वहति जमुता, खग बोलत, धृया कनज फूल, भनि गुंजे ।  
'वन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधि सुत किरन भानु भई भुंजे ॥  
ये ऊवव कहियो साधव सो बिरह करद कर मारत लुंजे ।  
'सूरदास' प्रभु को मग जोबत अखियाँ भई वरन ज्यों गुंजे ॥

( ५ )

दूर सरदु पीना कर धरियो ।

मोड़े मृग नाही रय हाँकयो नाहिन होत चंद्र को ढरियो ॥  
 थीति ताहि पे सोई जानें कठिन है प्रेम पास को परियो ।  
 जब तें पशुरे कमल-नयन सगि रहत न नयन नीर को ढरियो ॥  
 सीतल चर अंगिनि सम लागत कहिये धीर कवन विधि धरियो ।  
 'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस विनु सब झूठो जतनान को करियो ॥

( ६ )

ऊचो अथ यह समझ भई ।

नंदनंदन के अंग अंग प्रति चरमा न्याय दई ॥  
 पुन्तल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति मुँदै लई ।  
 तजत न गहक कियो कपटो जब जानी निरस गई ॥  
 आनन इंदु वरन, सम्पुट तजि करग्ये ते न नई ।  
 निरमोही नहिं नेह कुमुदनी अन्तहिं हेम हई ॥  
 तन घनतयाम सेई निखियासर रति रखना छिजई ।  
 'सूर' विपेरु-दीन चातक मुग बुँदौ तौन सई ॥

( ७ )

तब तें दू मुख हन नचु पायें ।

जबतें दार सन्दन तिहाग, सुनत तवारा आयो ॥  
 फूले व्याल-दुरे तें प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।  
 फूले मिरगा चाँकि चरन ते हूते जो मन विखरायो ॥

## विनय के पद

( १ )

चरन कमल वन्दौ हरि राई ।

ज'की कृपा पंगु गिरि लंधै, अंधे कूँ सब कुछ दरसाई ॥  
बहिरो सुनै. मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र घराई ।  
'सूरदास' खाभी करुनामय बार-बार बन्दै तैहि पाई ॥

( २ )

मो खम कौन कुटिल खल कामी ?

जिन तनु दियो ताहि विहरायो ऐसो नौन हरामी ॥  
भरि-भरि चर विषय को धावौं जैसे सुकर भामी ।  
हरिजन छाँड़ि हरी विमुखन की निशि दिन करत गुलामी ॥  
पापी कौन बढ़ो है मोतें सब पतितन में नामी ।  
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है मुनिये श्रीरति खाभी ।

( ३ )

अध के साधव मोहिं चधारि ।

मगन हौं भव अंबुनिधि में कृपासिधु सुरारी ॥  
नीर अति गंभीर माया, लोभ, लहरि तरंग ।  
ल्लिए जात अगाध जल में गहे प्राह अनंग ॥  
भीन इन्द्रिय अति हि काटत मोट अध सिर भार ।  
पग न इत उत धरन पावत चरमि मोड़-सेवार ॥



काम क्रोध समेत सृष्ट्या, पवन अति मरुमोर ।  
 नहि चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर ॥  
 यक्षयो तीच वेशल विडवल सुनहु करुमा-मूल ।  
 स्याम भुज गहि काङ्कि टारहु 'सूर' ब्रज फे कूल ॥

( ४ )

कीजै प्रभु अपने विरद की लाज ।

महापति कथरूँ नहि आयो नेहु तुम्हारे काज ॥  
 माया सगल घाम-धन-बनिता यँध्यो हो इहि साज ।  
 देगव सुनत सबै जानत हौं तऊ न आयो वाज ॥  
 कदियन पतिव बहुत तुम तारे श्वननि मुनी आवाज ।  
 दर्ई न ज'त सार सवाई चाहत चटन जहाज ॥  
 लीजै परि स्तारि 'सूर' को महाराज ब्रजराज ।  
 नई न करत कहत प्रभु तुम सौं सदा गरीब नेवाज ॥

( ५ )

खनम विरानो अटके अटके ।

सुत संपति गृह राज मान को फिरो अनत ही भटके ॥  
 कठिन जवनिका रची मोड़ की तोगी जाय न चटके ।  
 ना हरि भजन न सृष्टि विषय की रायो भीच ही लटके ॥  
 सब जंजाल सु शूद्र-जात सम ज्यों यात्रीगर नटके ।  
 'सूरदास' सोभान सोभिय त रिय यिहून धन मटके ॥

( ६ )

प्रभु हौं अब पतितन को राजा ।

पर निन्दा मुख पूरि रह्यो जग यह निसान नित याजा ॥  
 वसना देखल सुभट मनोरथ इन्द्रिय खदग हमारे ।  
 मंत्री काम कुमत दैवे को क्रोध रटत प्रतिहारे ॥  
 गज अहंकार चढ्यो दिग विजयी लोभ छत्र धारे सीस  
 फौज असत संगति की मेरी ऐसो हौं मैं ईस ।  
 मो२ मदे बन्दी गुन गावत, मागध दोष अपार ।  
 'सूर' पाप की गढ़-टढ़ कीन्हों मुदकन लाइ देवार ।

( ७ )

माधव जू ! यह मेरी इठ गाई ।

अब आज तें आप आगे, दर्ई लै आइये चराइ ॥  
 हे अति हरहाई हटकठ हूं बहुत अमारग जाति ।  
 फिरत वेद-वन उख उखागत सब दिन अरु सब राति ॥  
 हित कै मिलै लेहु गोकुल पति अपने गोधन माँइ ।  
 सुख सोऊँ सुनि वचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँइ ॥  
 निधरक रहौं 'सूर' के स्वामी जन्म न पाउँ फेरि ।  
 मैं ममठा रुचि सो जदुराई पहिले लेहु निवेरि ॥

( ८ )

जो लौं सत्य स्वरूप न सुकत ।

तौ लौं मनु मानि कंठ बिसारे पिरतु सफल बन चूमत ॥

अपनी ही मुग्न गलिन मंद गति देखत दरपन माँह ।  
 ता कलिमा मेरिटिचे करन पचत पखारत छाँह ॥  
 तेल तूल पावक पुट भरि धरे वनै न दिया प्रकामत ।  
 कहत यनाय दीप की वार्ते कैसे हो तम नासत ॥  
 'सूरदास' जब यह मति आई वे दिन गये अलेखे ।  
 कह जाने दिनकर की मईमा अंध नयन धिनु देखे ॥

( ६ )

अब हौं नाच्ये बहुत गोपाल ।

काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ॥  
 महा मोह के नूपुर वाजत, निदा सबद रसाल ।  
 भरम भयो मन भयो पलावत, चलत कुसगति चाल ॥  
 एसना नाद करात घट भीतर, नाना विधि दे ताल ।  
 माया को कटि फँटा बाँधे, लोभ तिलक दियो भाल ॥  
 कोटिक कला काटि सुरराई जल यल सुधि नहि काल ।  
 'सूरदास' की सवै अविद्या दूर करो नन्द लाल ॥

( १० )

अधिगति गति कटु कहत न आवै ।

व्यों गूंगे हि मोठे फल को रस अन्नुरगत ही माय ॥  
 परम स्वाद सब ही तु निन्तर अमित तोंष उरतावे ।  
 मन वाना को अगम अगोचर सो जाने जो बावै ॥  
 रूप रस गुन जाति गुगुति धिनु निरालम्ब मन चहुत धाव  
 सब बाध अगम विचराने नू' खडुन लीला पद गावै ॥

## तुलसीदास

जीवन परिचय—गोस्वामी जी का जन्म राजापुर जिला बाँदा में संवत् १५८६ में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुन्सी था। इनका वास्तविक नाम 'शमभोजा' था। इनका जन्म अशुक्त मूल वंश में हुआ था। इनके माता-पिता इनकी बाल्य-वस्था में ही स्वगवासा हो गये थे और दाने-दाने को बिल्लालते फिरते थे। इनका विवाह दानदंष्ट्र पाटक की कन्या रत्ना देवी से हुआ था। जनश्रुति है कि इन्हें रत्ना की भर्त्सना से ईश्वर की आर प्रतुराक्षा हुई। अरत्नी खी के नैहर चले जाने पर ये भी प्रेम-वश उसके पीछे चले गये। इस पर इनकी खी ने कहा—

“अस्ति-चर्म-मय देह यह, तासो इतनी प्रीति;  
होही जो भी रोम पर, होतिन तो भव-भीति।”

तुलसीदासजी को यह बात लग गई और वे घर छोड़ कर निकल पड़े। वे महात्मा नरहरिदास के पास गये और उनके शिष्य हो गये। इन्होंने अनेक तीर्थों का भ्रमण किया, पर इनका मुख्य निवास-स्थल काशी था। गोस्वामी जी को अन्तिम दिनों में बात रोग हो गया था। ये बाहु पीड़ा से पीड़ित रहे, परन्तु बलरी इनुमानजी की कृपा से वह पस चली रही।

गोस्वामी जी की मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

‘संयद् सान्ह से असी, असी गंग के तीर।  
सावन सुम्ता उत्तमी, तुलसी वज्यो सरार ॥

इसके अनुगार गोस्वामी जी का देहावसान सावन शुक्ला सप्तमी को होना प्रकट होता है, किन्तु गणना से यह अशुद्ध है। गोस्वामीजी के परम मित्र टोडर के वंशज गोस्वामी जी की मृत्यु निधि पर आज भी ब्राह्मणों को छाँवा देते हैं। यह तिथि सावन शुक्ला तीज है। अन्य शास्त्रों के आधार पर भी गोस्वामी जी की मृत्यु-निधि 'सावन-शुक्ला तीज रत्नि' ही सिद्ध होती है।

गोस्वामी जी के कुल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। किसी ने इन्हें कान्य कुल ब्राह्मण और किसी ने सरयूपारीण माना है। सरयूपारीण होना अतिक्रम संगत जान पड़ता है। गोस्वामीजी के स्नेहियों में नसरब अर्जुनस्य पानपाना, महाराज मानसिंह, नामाजी और मधुसूदन सरस्वती आदि फरे जाते हैं।

ग्रन्थ — गोस्वामी जी के रचे बाराह ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें ५ बड़े और ७ छोटे हैं। दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरित मानस विनय-वशिष्टा बड़े ग्रन्थ हैं तथा रामलला नन्द्यु, पार्वती मंगल, खानकी मङ्गल, बरदे रामायण, वरग्व संश्लिषी, कृष्ण गोतावली और रामाषा प्ररनावली छोटे।

भाव पक्ष — गोस्वामी जी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरित मानस है। उसकी जोड़ का प्रथम हिस्से में तो बरा, अन्य भाषाओं में भी मिलना पठित है। मानस-रत्न की अनेक दशावली का उद्देश्य इस पात्र्य में है। जिन प्रकार तुलसी के आगव्य देव 'राम' पूर्ण पुरुषोत्तम थे, उसी प्रकार यह राम का उद्देश्य है। प्रत्यभिक्त, दार्शनिक, राजनीतिक, भक्ति-भावना, आदर्श-मार्गता आदि जिन दृष्टि से इस पात्र्य को देखते हैं, हमें हम उसका पूर्ण पाने हैं। 'मानस' में तुलसी की वाणी की पहुँच गन भाषा और व्यवसाय तक है, बर कि हिन्दी के अन्य महकवि केवल एक एक भाव का पता पकड़ कर बैठ रहे हैं। एक और तो तुलसी की

द्वितीया व्यक्तिगत साधना के मार्ग में शुद्ध भगवद्भक्ति का उद्देश्य करती है, दूसरी ओर लोक पद्धत में पारिवारिक और सामाजिक सभ्यता और कर्तव्यों के निर्वाह का सौंदर्य दिखाती है।

नाथपंथी साधुओं ने जिस हृदय-विहीन हठयोग का प्रचार भोली हिंदू जनता में किया, वह गोस्वामी जी को पसंद नहीं आया। उन्होंने देखा कि इससे लोक-रत्न विकृत और क्षीण होता जा रहा है। समा-त्मिका वृत्ति में उसका कोई संबंध नहीं है। अतः उन्होंने ऐसी भक्ति-पद्धति का प्रसार किया, जिसमें जीवन के सभी पक्षों का समावेश है। न उसका धर्म या कर्म से विरोध है, न ज्ञान से। प्राचीन भारतीय भक्ति-मार्ग में अनेक बदती हुई बुराइयों का गोस्वामी जी ने तीव्रता के साथ संबन्ध किया। शैवों और वैष्णवों के बढ़ते हुए विद्वेष को उन्होंने अपनी सामं-जस्य-व्यवस्था द्वारा बहुत कुछ रोका। राम का शिव का और शिव को राम का सेवक बताकर उन्होंने दोनों दलों का समन्वय करने का प्रयत्न किया।

तुलसी जी भक्ते दास्य भाव की थी। रामचरित मानस में वे सदैव सच्चे सेवक की भाँति राम के साथ रहे हैं। जिन-जिन दृश्यों तथा घटनाओं का सम्बंध राम के साथ है, उन्हीं का वर्णन तुलसी ने किया है। 'राम' के आगे बट जाने, या छोड़कर चले जाने पर पीछे क्या घटित होता है, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, इसलिए उनके पात्र में उर्मिला उन्मत्ता ही बनी रही। गोस्वामी जी की इसी प्रवृत्ति ने उन्हें माता-सीता तथा अन्य स्त्री-पात्रों के शृङ्गार वर्णन से बचा लिया। वे घटनाओं के साथ बढ़ते हुए भी राम को नहीं भूलते और जब कभी 'राम' का प्रसंग उनको वर्णनों से दूर दृष्टा दिखाई देता है, तब वे थोड़े प्रसंग ला कर अपने राम को अवरण स्थापित कर लेते हैं।

गोस्वामी, जी का 'मानस' 'नाना पुराण निगमागम समत' है यद्यपि उसमें उनकी बुद्धि तथा कीर्तन पर समावेश भी स्पष्ट रूप से है।

उन्होंने जो कुछ लिखा भगवान राम के सम्बन्ध में ही लिखा । नर-काव्य करने की उन्होंने रायष ही ले रक्ती थी । उन्होंने कहा है:—

‘कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना । विर धुनि गिय लागि पद्धिताना ।’

सामाजिक दृष्टि से भी रामचरित मानस श्रद्धितीय ग्रंथ है । परिवार के नाना संबंधों के निर्वाह के आदर्श जितने ‘मानस’ में मिलते हैं, उतने श्रेष्ठतुल्य हैं ।

**शैली**—तुलसी का हृदय-पक्ष जितना प्रबल है, उतना ही कला पक्ष भी । उन्होंने जिस प्रकार मानव-प्रकृति के नाना रूपों का नाना संबंधों के संयोग से श्रुत्य विश्लेषण किया है, उसी प्रकार काव्य की प्रकृति के नाना रूपों के दर्शन भी उन्होंने कराये हैं । तुलसी का साहित्य सत्कालीन सभी प्रकार की प्रचलित भाषाओं में है । तुलसी ने छिठी पदति को श्रद्धता नहीं छोड़ा । जयदेव और विद्यापति की गीत पदति पर गोस्वामी जी ने गीतावली और विनय-सत्रिका की रचना की; चंदबरदाई की छप्पय पदति पर उन्होंने रामचरित मानस में बोरता पूर्ण प्रसंगों पर कई सुंदर छप्पय छंदों को रक्खा । गंग आदि भाटों की कवित्त-संदेश वाली पदति पर राधा राम का वैभव-वर्णन के लिए कवितावली लिखी । ईश्वरदास और जयसी की दोश-चौशई वाली प्रबंध-पदति पर तो उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस ही लिख डाला । इसी प्रकार कबीर आदि संतों को उपदेशात्मक दोश वाली पदति पर दोहावली की रचना की । गोस्वामी जी ने जिस शैली को अपनाया; उसी को उत्कृष्टता पर पहुँचा दिया । उनके आगे उन शैलियों के प्रवर्तक भी पीछे पड़ गये ।

**भाषा**—गोस्वामी जी का अध्ययन बहुत विस्तृत था । राम-चरित मानस के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ के श्लोक, विनय-सत्रिका की संस्कृत पदावली तथा मानस की स्तुतियाँ उनसे संस्कृत-ज्ञान का पूर्ण परिचय देती हैं । ये सत्कालीन कान्य भाषाओं के भी पूर्ण पंडित थे । श्रद्धा

श्रीर ब्रह्म दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था । अदधी में 'मानस' की रचना कर उन्होंने अक्षरी भाषा को अमर कर दिया तो विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली आदि ग्रन्थों को ब्रजभाषा में लिख कर ब्रजभाषा साहित्य की श्री वृद्धि की । भाषा की दृष्टि से भी गोस्वामी जी सूर और जायसी से बहुत ऊपर उठे हुए हैं । जायसी की अक्षरी और सूर की ब्रज-भाषा में वह साहित्यिकता और मंस्कृतमयता नहीं है जो तुलसी में है ।

**प्रभाव** — हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और सिन्धु से लेकर बंगाल तक राम-नाम की प्रतिष्ठा को अक्षर्य रचने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी ही थे । हिन्दू लोग 'मानस' को पाँचवाँ वेद मान कर उसके वचनों को प्रमाण स्वरूप मानते हैं । उनकी भारत में कदाचित् ही ऐसा कोई हिन्दू घर होगा, जिसमें रामायण की एक प्रति न मिलती हो और शायद ही कोई हिन्दू होगा, जिसे रामायण की एकाध चौपाई कण्ठस्थ न हो । तुलसी ने 'राम' को हिन्दू हृदय में मिला कर एकाग्र कर दिया, साथ ही स्वयं तुलसी भी हिन्दुओं के हृदय में घर कर गये । हिन्दो का कोई कवि ऐसा ऐसा नहीं है, जिसका प्रभाव जनता पर इतना रूप से पड़ा हो । 'सूर सूर' ने आत्म-कल्याणकारी, एकामो-भक्ति का तीव्र प्रकाश फैला तो 'तुलसीदास' ने स्निग्ध, हृदयहारी, मंगलदायक, सुधावल्ल लोक-कल्याण की पावन ज्योत्स्ना प्रसारित की, जिसकी स्निग्धता में सम्पूर्ण हिन्दू समाज विनिमज्जित हो गया ।



## तुलसीदास

### राम-नाम महिमा

दोहा- गिरा अरय जल बोचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न ।

वन्दौं सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥

पौ भई- पन्दौं राम नाम गुरुर का हेतु कृपानु भानु हिमकर को ॥  
विधि हरिहर मय वेद मात सा अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥  
महा मंत्र जोइ जगत मईनू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ॥  
महिमा जामु जान गन राज प्रथम पूर्णगत नाम प्रभाऊ ॥  
जान आदि कशि नाम प्रतापू । भरत मुद्ध करि उलटा जापू ॥  
सहस्र नाम सम गुनि सिव वाती । अपि जेईं विय सहस्र भवानी ॥  
हरये हेतु हेरि हरु हीको । बिग भूपनु तिय भूपन तीको ॥  
नाम प्रभाव जान मिय तीको । काल कूट फलु दीन्ह अमी को ॥

धरपा अतु रघुपति भगति, तुलसी चालि गुदास ।

राम नाम पर धरत युग, सावन भादव मास ॥

आमर मधुर मनोहर दीऊ । वरनू विलोचन उत प्रिय लोऊ ॥  
सुमिते मुलभ सुन्दर सष काइ । लोरु लाहु परलोक निबाहु ॥ १ ॥  
कहत मुनव मुं गते मुठि नोके । राम लपन सम वेष तुतपो के ॥  
धरत धरत प्रीत विजगती । ब्रह्म लोक सम सहज संपाती ॥  
नर नागयण सरिस मुध्रात । जग बालक विसेषि जन चावा ॥  
भगति मुविय फल करन विभूषन । जग दित हेतु विमल विधु पूषन ॥

स्व'द तोष सम सुगति सुधा के । कमठ सेप सम घर वमुधा के ॥  
जन-मन मंजु कंज मधुकर से । षोड जसोमति इरि इलपर से ॥

एक धनु एक मुकुट मनि, सत्र वरनि पर जोठ ।  
तुलसी रघुपर नाम के, वरन विराजत दोठ ॥

समुक्त सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परम पर प्रसु अनुगामी ॥  
नाम रूप दुद ईस चपाधी । अरुय अनादि सुमासुकि साधी ॥  
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेदु समुक्तहिं साधू ॥  
देखहहिं रूप नाम आधीना । रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना ॥  
सुमिरिअ नामु रूप चिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिडेखे ॥  
नाम रूप गति अरुय कशानी । समुक्त सुखद न परति बखानी ॥  
अगुन सगुन विच नाम सुसाखी । समय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥

राम-नाम-मनि-दीप घर, जीह देहरी द्वार ।  
तुलसी भीतर बाहिरहुँ, औ चादसि चजियार ॥

नाम बीह जपि जागहिं जोगी । विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ॥  
अक्ष सुखहिं अनुभवहिं अन्पा । अरुय अनामय नाम न रूपा ॥  
जाना चहिं गूड गाते जेऊ । नाम जाइ गपि जानहिं तेऊ ॥  
बाधक नाम जपहिं लय लार्ण । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाप ॥  
अरि नाम वनु आरव भारी । मित्रहिं कुषंकट होहिं सुखारी ॥  
राम भगत जग चारि प्रकारा । सुखी चारिब अनध वदारा ॥  
चहुँ चतुर कहुँ नाम अधारा । ग्याती प्रसुहिं विसेपि पिआरा ॥  
चहुँ लुग चहुँ सूति नाम प्रभाऊ । कलि विसेपि नहिं आन वराऊ ॥

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।

नाम सुपेय-पियूष-हृद, तिन्हहुँ किये मन मीन ॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सखुना ; अरुव अगाध अनादि अनूपा ॥

मोरे मत बड़ नाम दुहुँ ते । किये जेहि जुग निज वस निज धूने ॥

प्रौढि मुकन जनि जानहि जनकी । कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥

एक दारु गत देखिअ एकू । पावरु सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

अमय अगन जुग सुगम नाम तें । कहैउ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ॥

व्यापक एकू ब्रह्म अविनासी । सत चेतन-धन आनँदरासी ॥

अस प्रमु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ।

नाम निरूपन नाम जतन तें । छोट प्रगटव जिमि मोल रतन तें ॥

निरगुन तें यहि भाँति बड़, नाम प्रभात अपार ।

कहहुँ नामु बड़ राम तें । निच विचार अनुमार ॥

राम भगत हित नर वनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥

नामु सप्रेम जगत अनयासा । भगत होहि मुद मंगल वासा ॥

राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि रत्न कुमति सुधारी ॥

रियि हित राम मुकेतु सुतां को । सहित सेन-सुद, कोन्दि विषकी ॥

सहित-दोष दुख दाम दुखसा । दल नाम जिमि रवि, निचि नसा ॥

मंजैठ राम आपु भज आपू । भव-भय-भंजन नाम प्रतापू ॥

दंढरु धन प्रमु कोन्दि सोहावन । जत मन अमित नाम किय पावन ॥

नितिष ( निरु ( दने रतुर्नदन नाम स रुच कति-रतुप निरुंदन ॥

सररो गीध सुतेधकनि, सुर्गाव दीन्दि रघुनाथ ॥

नाम वधारे अमित रत्न, वेद विदित गुन गाय ॥

स्व'द तोष स्रम सुगति सुधा के । कमठ सेष स्रम घर वपुधा के ॥  
जन-मन मंजु कंज मधुकर से । जोह जसोमति इरि हलधर से ॥

पंरु छत्रु एक मुकुट मनि, सय वरतनि पर जोर ।  
तुलसी रघुपर नाम के, वरन विराजत दोर ॥

समुक्त सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परम पर प्रभु अनुगामी ॥  
नाम रूप दुर ईस उपाधी । अरुय अनादि मुषागुक्ति साधी ॥  
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेदु समुक्तइहि साधू ॥  
देखइहि रूप नाम आधीना । रूप ज्ञान नहि नाम विहीना ॥  
सुमिरिअ नामु रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिपेखे ॥  
नाम रूप गति अरुय कहानी । समुक्तसुखद न परति यरानी ॥  
अगुन सगुन विष नाम सुसाखी । समय प्रयोधरु चतुर दुमाखी ॥

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।  
तुलसी भीतर याहिरहुँ, जो चाइसि बजियार ॥

नाम खीह जपि जागहि जोगी । विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ॥  
प्रद सुखहि अनुभवहि अन्पा । अरुय अनामय नाम न रूपा ॥  
जाना चइहि गूड गने जेऊ । नाम जाइ जपि जानहि तेऊ ॥  
साधरु नाम जपहि लय लार । होहि सिद्ध अनिमादिकु पाए ॥  
खरहि नाम बनु आरत भारी । मिःहि कुसंठट होहि सुधारी ॥  
राम अगत जग चारि प्रचारा । सुखी चारिअ अनध उदारा ॥  
चहुँ चतुर फहुँ नाम अभास । ग्यातो प्रनुहि विसेवि पिधारा ॥  
चहुँ जुग चहुँ खूति नाम प्रभाऊ । कलि विसेविनहि आन उराऊ ॥

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।

नाम सुपेय-पियूष-हृद, तिन्हहुँ किये मन मीन ॥

अगुन अगुन दुइ ब्रह्म सरुवा । अरुय अगाध अनादि अनूवा ॥

मोरे मत बड़ नाम दुहुँ ते । किये जेहि जुग निज बस निज चूने ॥

प्रौढि मुगत जनि जानहि जनकी । कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥

एक दारु गत देखिअ एकू । पावरु सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

अमय अगम जुग सुगम नाम तें । कहेउ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ॥

व्यापक एकू ब्रह्म अविनासी । सत चेतन-बन आनँदरासी ॥

अस प्रभु हृदय अद्वत अविहारो । सकल जीव जग दीन दुखारो ।

नाम निरूपन नाम जनन तें । छोट प्रगटत जिमि मोल रवन तें ॥

निरगुन तें यहि भाँति बड़, नाम प्रमार अवार ।

कहहुँ नामु बड़ राम तें । निब विचार अनुमार ॥

राम भगत हित नर लनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ॥

नामु सप्रेम जगत अनयासा । भगत होहि मुद मंगल वासा ॥

राम एक तापस तिथ तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥

रिपि हित राम मुकेतु सुवां की । सहित सेन-गुराँकीन्हि विशकी ॥

सहित-दोष दुख दास दुखासा । इतर नाम जिमि रविनिशि नासा ॥

मंजेर राम आपु भव चापू । भव-भय-मंजन नाम प्रतापू ॥

दंडक धन प्रभु कोन्ह सोडावन । जन मन अमित नाम किय पावन ॥

निमित्तपर निकर दने रतुनंदन नाम सकल कलि-रुप निरुदन ॥

सरो गीध मुतेवरान, सुगांत दीन्हि रघुनाथ ॥

नाम वधारे अमित रत्न, वेद विदित गुन गाय ॥

नाम सुकृष्ट विभीषण दोऊ 'राजे' सरन जान सब कोऊ ॥  
 नम गरीब अनेक नेवाजे । लोक वेद दर विरद दिवाजे ।  
 राम भालु कवि-कटकु नगौरा । मेतु हेतु सम कीन्हे न धोर ॥  
 नाम लेन भय निधु सुनावो कहु विचार तुजन मन माही ॥  
 राम सकुल रन रावन मार । सीय सँदित निज पुर पगु धारा ॥  
 राजा राम अरथ राजव नो गवन गुन सुर मुनिवर चानी ॥  
 सेवक सुमिरत नाम सप्रोरी । विनु स्रम प्रयत्न मोद दुल-जोवो ॥  
 किरत सनेह मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहिं सरने ॥

प्रज्ञ राम ते नामु बह, पर दायक परदानो ।

राम धरित सत कोटि महूँ, लिए महेश जिय जानि ॥

नाम प्रसाद संभु अपिनासी । साजु अमंगल मंगल रासी ॥  
 मुक्त छनकादि सिद्धि गुनि जोगी । नाम प्रसाद मग्न सुख भोगी ॥  
 नारद जानैव नाम प्रताप । जग प्रिय हरि हरि-हर प्रिय आप ॥  
 नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसाद । भगत सिरोमनि भे प्रश्लाद ॥  
 भूय सगलानि जपेठ हरि नाऊँ । पाथठ अचर अनूपम ठाऊँ ॥  
 मुमिति पथन ह्यु पावन नामु अपने पस करि राते रामु ॥  
 'कप्तु अर्थात्' राज गनिकाऊ मये सुकृत हरि नाम प्रभाऊ ॥  
 कहहुँ कौं लोनि न म रहई । रामु न मकहि नाम गुन नाई ॥

नाम राम को काराह, कति करमान निवासु ।

जा मुगिरत भयानाव, तुलसी तुलसी दामु ॥

चहुँ गुन तीनि जा निहु लोच । भये नाम जति जाय विरोहा ॥  
 वेद-पुणन संव- 'व' एह चकत सुख-दश राम जेह ॥

ध्यान प्रथम जुग मल विघ्न दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ॥  
 कलि कैवल्य मल-मूल-मलीना । पाप-पयोनिधि जन-मन-मीना ॥  
 नाम काम तरु काल कराळा । मुमिरत समत सकल जग जाला ॥  
 राम नाम कलि अभिमत दाता । हिन परलोक लोक पितु माता ॥  
 नहि कलि करम न भगति विवेक । राम नाम अवलंबन एक ॥  
 काल नेमि कलि कष्ट निधानू । नाम सुमति समरथ इजुमानू ॥

राम नाम नर केसरी, कनक कसिपु कलि कालु ।

जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दर्ल सुर खालु ॥



रामचरित मानस से

## विनय के पद

( १ )

गाइये गनरात जगवन्दन । मंकर सुवन भवानी नन्दन ॥  
 सिद्धि-मदन गन-वदन विनायक । कृपासिंधु सुन्दर सत्र लायक  
 मोटक प्रिय नुर मंगल दाता । विद्या वाग्धि बुद्धि विधाता ॥  
 मोगत तुर्भाव दास कर जोरे । बसहि राम-भिय मानस मोरे ॥

( २ )

बावरो रावरो नाठ, भवासी ॥

पानि चढ़ो दिन, देत हुर पितु, वेद चढ़ाई भानी ॥  
 निज घर दी घर यात विजोरुहुँ, शौं तुम परम सयनी ॥  
 सिष की दर्ई सभदा देसत श्री सारदा सिहानी ॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नदी निसानी ॥  
 तिन रंजन को नाक सँवारत, हौं आयो नकशानी ॥  
 दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुत्तानी ॥  
 यह अधिकार सौंपिइ औरहि, भीख भजो मैं जानो ॥  
 प्रेम प्रसंसा-विनय-व्यंग जुत, सुनि विधि की बर वानी ॥  
 तुलसी मुदित महेस, मनहि मन जगत मानु सुसकानी ॥

( ३ )

कवहुँक अंघ अवसर पाई ।

मेरि औ सुधि छाय बी, कहु कहन कथा पजाइ ॥  
 दीन सघ अंग हीन छीन, मनोन अधी अधाइ ॥  
 नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कदाइ ॥  
 युक्ति है "सो छे कौन ? कदाँबी नान दसा जनाइ" ॥  
 सुनत राम कृपालु के मेरी विगारि औ धनी जाइ ॥  
 जानकि जग जननि जनछो, किर बचन सदाइ ॥  
 तेरे तुलसीदास भव तब नाथ गुन-गन-गाइ ॥

( ४ )

तू दयालु, दीन दा, तू दानि, हौं दि रागो ॥  
 हौं प्रसिद्ध फतही, तू दग तुं न हारी ॥  
 नार तू पनाइ को, अनाइ पीत गो गो ॥  
 गो समः-आरत नदि, अरत इर तामो ॥



महा तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चैरो ॥  
 तात, मात, गुरु, सखा तू सय विधि हितु मेरो ॥  
 होहि, मोहि, जाते अनेक मानिये जो भावै ॥  
 क्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन सरन पावै ॥

( ५ )

सुनु मनु मूढ सिखावत मेरो ।

हरिपद-विमुख रह्यो न राहु सुख सठ यह समुक्ति सवेरो ॥  
 विछुरे राव, सखि मन, न यननि तें पावत दुख बहुतेरो ॥  
 भ्रमत समित निशि दिवस गगत मँद, तँह रिपु राहु घबेरो ॥  
 जद्यपि अति पुनीत गुर-सरिता तिहूँ पुर मुजस वनेरो ॥  
 तजे चरन अजहूँ न मितत नित बढ़ियो ताहूँ केरो ॥  
 छुटै न विपति भजे बिनु रघुपात स्रुति संदेह नियोरो ॥  
 'तुलसीदास' सय आस दाँड करि होहि राम कर चैरो ॥

( ६ )

जाहँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?

काको नाम पतित-पावन जग ! केहि अति दीन पियारे ?  
 फौज देव भगव विरद-हित, हठि-इठि अधम उधारे ?  
 राग-भृग, व्याध, पयान, विटप, जहूँ जमन कवन सूट तारे ।  
 देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सय माथा-विषम विचारे ।  
 तिनके दाय दास तुलसी प्रसू कदा अवनपी हारे ?

( ७ )

अब लौं नसानी अब न नसें हों ।

राम कृपा भव-निष्ठा सिरानी, जागे फिर न डरें हों ॥  
 पायो नाम चाक चिन्ता-मनि, हर कर तैं न रसे हों ॥  
 श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसे हों ॥  
 पर बस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बम हौ न हँसैं हों ॥  
 मन मधुकर पन कारि तुलसी रघुपति पद-कमल बसे हों ॥

( ८ )

बेखबर कहि न जाइ का कहिए

देखत तब रचना विचित्र अति उमुक्क मन हो मन रदिए ॥  
 सून्य भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु विनु लिखा चितेरे ॥  
 धोये मिटे न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ॥  
 रविकर नोर यसै अति दारुन मरर रूप तेहि नाहि ॥  
 बदन हीन सो प्रसे चराचर पान करन जे जाहि ॥  
 फोर कह सत्य, झूठ कह फोड़, जुगल प्रयत्न करि मानै ॥  
 तुलसी दास परि दरेँ तीनि भ्रम तो आपन पहचानै ॥

( ९ )

हे हरि ! कसन दरहु भ्रम भारी ?

उद्यपि मृषा सत्य भासै अब लागि नहि कृपा तुझारी ॥  
 अर्थ अपिखानान जानिय नमृति नहि जाइ गोसारी ॥  
 विनु दोषे निज हट-पठ पर्यस परयो कीर ही नारी ॥

सपने व्याधि विविध व्याधा भई, मृत्यु उपस्थित आई ॥  
 बेंस अनेक उगय हरि, जागे विनु पीर न जाई ॥  
 श्रुति गुह-साधु सुमूर्ति-संगत यह दृश्य सदा दुखरागी ॥  
 तेहि विनु तजे, मजे विनु रूपान विपति सके को टागी ॥  
 यह उपाय मंसार-नगरन कहँ । यमल गिरा श्रुत गावै ॥  
 तुनसिदास'मैं मरि'गए विनु जिय सुख कबहुँ न पावै ॥

( १० )

मैं हरि पतित पावन सुने ।

मैं पतित, तुम पतित पावन, दोउ बानक बने ॥

व्याध, गर्निका, गज, अजामिल राखि निगमनि भने ॥

और अधम अनेक तारे जात कापें गनै ?

जानि नाम अज्ञान जोन्हे, नरक जय पुर मनै ॥

दास तुलसी सरन आयो राखिए अपने ॥

( ११ )

मन पछि तै है अवसर बीते ।

दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु करम वचन श्रु ही ते ॥

सहस बाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल-बली ते ॥

हम-हम करि धन धाम सँवारे, अन्त बले उठि रीते ॥

मुत वनितादि जानि स्वारथ-रत न कम नेह सयहीतें ॥

अन्तहुँ तीहि तर्कगे पामर ! तू न तजे अथ ही तें ॥

अर नागिः अनुराग जागु जइ त्यागु दुरासा जी तें ॥

शुभै न काम अगिनि तुलसी, कहुँ विषय भोग बहू भीतें ॥

—बिनय पत्रिका से

## राम-व्रजवास

### सवैया

कीर के हाथ उर नू। चोर विभूत उरम अंगति राई।  
 औध तनी मगवास के हल उगों, पंचके साथ उवों लोग तुगई॥  
 संग गुवांपु पुनीन निग मगो धम-किया धरि देह मुझई॥  
 राजिव लोचन गम पले ताज बा। का राव चरुकी नाई॥३॥  
 नाम अत्रामिल से खन फांति छार नदी भव मूडन जडे।  
 जे सुभरे गिरि मेह निजा-वन दोग अ-अनु-वारिधि पादे॥  
 तुलसी जेठ के पद-रंजन तौ प्रहरी तांठाने ज' हरे अर मगदे।  
 ते प्रभु या सरिता तरिये इह भोगत नाव करारे ह' छादे॥४॥  
 एहि पाद तौ वारिह दूर अडे, कटि लों उत पाद दिगदर्शौ जू।  
 पर से पग धूर तर नानी, धरनी धर कयो समुझदौ जू॥  
 तुलसी अचलमचन और मधू लारिना फेह भौति जिघादौ जू।  
 मरु मारिण मरि शिवा पग पाये दौं ताव न ताव पदादौ जू॥५॥

### द्विच

पात भरी महंगे, मछल मुत पारे-पारे,  
 देवट का जगत बसु वेद न गदाही।  
 मय परिवार मेरो काही कायि राजा जू,  
 हीं दोग बिच-हीन छेछे दूसरो गदाही।

गौतम की घरनी क्यों तरंगी तरनी मेरी,  
 प्रभु सों निपाद है के वाद न बढ़ाई।  
 तुलसी के ईम राम ! रावर सों साँची कहीं,  
 बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाई॥४॥  
 प्रभु रुद्र पाद के बुलाइ बाल घरनिदि,  
 वन्दि के चरन चहुँ दिशि बैठे घोर-घेरि ॥  
 छोटी मो कठौता भरि अति पानी गंगा जू करे,  
 धोइ पाँय पियन पुनीत वारि फेरि-फेरि ॥  
 तुलसी सराहैं ताको भाग स'नुराग सुर,  
 धरपैं सुमन जय-त्रय कहैं टेरि-टेरि ॥  
 विविध सनेह-सानी, बानी असयानी सुनि,  
 हँसे राधौ जानकी लपन तन हेरि-हेरि ॥५॥

### सवैया

पुर तें निकसी रघुपीर बधु, धरि धोर दये मग में डग हूँ ।  
 मलकी भरि माल कनो जल को पदु सूगि गये मधुराधर वैं ॥  
 फिर बूझति हूँ "चतनो अब केतिरु, परणकु ट करि हूँ कित हूँ ।  
 तिय की साँख आनुरता रिध की अँगियाँ अति चार चली जत्र चवै  
 जल को गये लक्षण हैं लरिका, परिगो रिध छोड़ घरीक हूँ ठाढ़े  
 पोंछि पसेऊ मयारि करौं, अरु पाँय पथारिहौं भूसुरि डढ़े ॥  
 तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै बैटि बिलंबु तौं कएटक पाढ़े ।  
 ज्ञानकी न'ह को प्रेम लखयो, पुलकी तनु वारि बितोचन पाढ़े॥॥

हीस इटा उर पाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरोद्वि सी भौंहे ।  
 तून सरोवन वाने भरै, तुलसी यन मारग में सुठिसों हैं ॥  
 सादर बारहि बार सुभाय, चित्तै तुम त्यों हमारो मन मोहै ।  
 पूछति ग्राम बधू सिय नौ कही मोवरे से सन्धि रावरे हो है ॥१॥  
 मुनि सुन्दर बैन सुधारस घाने सयानी हैं जानकी अनि मली ॥  
 तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुमाइ बहु मुसुमाइ पली ॥  
 तुलसी तेहि श्रीसर सोहैं सचै अवलोकति लोचन लाहु अलि ।  
 अनुराग तद्भाग मे भातु चरै विषसी मनु मंजुल कंज फली ॥२॥  
 प्रेम सी पीछे तिरछे प्रियाहि चित्तै, चितु दै पत्ते लैं चित खोरै ।  
 श्याम सरीर पसेउ लसे, दुनसै तुलसी छवि सों मन सोरै ॥  
 लोचन लाले चलै मुकुटी फल काम कमान हू सो वन तोरै ।  
 राजत राम कुरंग के संग, निरपंग कसे धनु सो सर जोरै ॥३॥  
 सर-आरिह आरिह यनाह वसे कटि, पानि सरावन नायक लै ।  
 यन रोहत राम पिरै मृगया, तुलसी छवि सो धरनै किमि कै ॥  
 अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौकि चके चितवै चितु है ।  
 न दगो, न भगै जिय जानि मिनीमुग पंचधरे रतिना .क है ॥४॥  
 विषय के वासी वनासी तपोमत धारी महा धनु नारी दुतारै ।  
 गौतम तीय तरी, तुलसी सो कथा मनो भे मुनि वृंद सुतारै ॥  
 हौं हैं मिला मध चन्द्रगुनी पर मे पद-मंजुत फंज तिशरै ।  
 कीन्दी भली रघुनायक जू करना करि कानतु दो पग भारे ॥५॥

## सेनापति

सेनापति का जन्मकाल संवत् १६४६ के आसपास माना जाता है। इन्होंने फ़विच रत्नाकर के प्रारम्भ में अपना वंश-परिचय दिया है। उसके आधार पर ये दीक्षित गोत्रिय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर, पितामह का परशुराम और गुरु का हिरामणि दीक्षित था। छंद के द्वितीय चरण के अद्वैत—‘गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है’—के अनुसार इन्हें अनूप शहर—निवासी शिद्ध किया गया है, परन्तु यह निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे अनूपशहर में ही उत्पन्न हुए थे। अपना परिचय इन्होंने इस प्रकार दिया है:—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम,  
जिन कीन्हें यज्ञ, बाकी जग में बढ़ाई है।  
गंगाधर पिता गङ्गाधर के समान जाकौ,  
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है ॥  
महाजानिमनि, विद्यादान हूँ कौं चिंतामनि,  
हीरामणि दीक्षित तैं पाई पंडिताई है।  
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,  
सब कवि जान दै मुनत कविताई है ॥

बुद्ध विद्वानों का अनुमान है कि सेनापति का सम्बन्ध मुसलमानी दरबार से भी था, किन्तु उन्हें मुसलमानों की दासता से विरक्ति हो गई थी। धन-लिप्सा तथा अन्यान्य प्रलोभनों से वे बचना चाहते थे। किस मुसलमान शासक के यहाँ ये रहते थे, इसका कुछ पता नहीं चलता। संभव है वे सुल्तानशहर के उन बड़े गुज्जर राजाओं के आश्रय में रहे हों, जो कि बर्होली के समय में मुसलमान लोगये थे।

सेनापति ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। साहित्यिक परम्परा से वे मली भाँति परिचित थे। इन्होंने अपनी कविता को सुरक्षित रखने की विशेष इच्छा थी। अनुमान है कि इसी उद्देश्य से इन्होंने कविता छंद में रचना की और अपना उपनाम 'सेनापति' रखती जो पवित्र के अतिरिक्त अन्य किसी छंद में सरलता में नहीं लिखा जा सकता। इन्होंने अन्य कवियों के भावों को अपने पाठ्य में आभ्य नहीं दिया है। वे स्वामिमानी प्रकृति के कवि थे। इन्होंने स्थान-स्थान पर जो गवीकृतियाँ बही हैं, वे सशक्ती नहीं उचित प्रतीत होती हैं। ये आत्म-सम्मान की ही संपत्ति समझते थे। पद्य पढ़ने पर तुच्छ व्यक्तियों के आगे हाथ पैराना इनकी प्रकृति के विरुद्ध था। भक्ति के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी इस प्रकृति का आभास दिया है:—

छापने करम करि दीही निरहीगौ, तौष

हैं ही करतार, करतार तुम पादे के।

ये प्रधानतः राम के भक्त थे, किन्तु वैष्णव धर्म की उदात्ता के प्रभाव से इन्होंने कृष्ण भक्त परव रचना भी की है। बरा साता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में ये कृष्णायन में जा कर रहे थे।

इनके लिखे हुए दो ग्रन्थ बतलाये जाते हैं—१-‘काव्य-कल्पद्रुम’ २-‘पवित्र रत्नाकर’। ‘काव्य कल्पद्रुम’ अभी देखने में नहीं आना। ‘कवित्र रत्नाकर’ इनकी अंतिम रचना मान पड़ती है। इसका रचना-काल संवत् १७०६ है, जैसा कि निम्नलिखित दोहे से प्रकट है—

संवत् सत्रद छै छ में, मोह गियापति पाइ।

सेनापति कविता सच, राजन सगी पदाई ॥

सेनापति का रचना-काल रीतिशाल के आरम्भ में माना जाता है। यी तो महाकवि पेशन ने संवत् १६२८ में ‘कवि प्रिया’ की रचना करके रीति-बान्ध-रचना की नींव डाल दी थी, किन्तु उसकी परम्परा का आरम्भ



चितामणि त्रिगटी से—संवत् १७०० के लगभग से—होता है । एक श्रौर भक्ति-काल की प्रवृत्ति विलीन होती जा रही थी और दूसरी श्रौर रीति-कालीन परम्परा का अंकुर जमने लग गया था । सेनापति की रचनाओं में उक्त दोनों कालों की प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है । राम भक्त-परक छन्दों की रचना करके वे सृज ही भक्तिकाल के कवियों की श्रेणी में जा बैठते हैं, तो 'श्रुतु वर्णन' में रीति-कालीन विशेषताओं के कारण उनकी गणना रीति-कालीन कवियों में की जा सकती है, परन्तु उन्होंने दोनों ही कालों की परिपाटी का निर्वाह मात्र करने के लिए कविता नहीं की ।

सेनापति पर अलंकारों का प्रभाव अधिक है । उनका 'अलंकार' शब्द बहुत व्यापक है । उसके अंतर्गत शब्दालंकार तथा अर्थालंकार ही नहीं, वरन् वे सत्र गुण आ जाते हैं, जिनसे काव्य अलंकृत होता है । वे रस सम्प्रदाय से भी प्रभावित हुए हैं, किन्तु बहुत नहीं । अलंकारों की प्रधानता के कारण उनका ध्यान रसोत्कर्ष पर नहीं जमने पाता । उनके लिए अलंकार साधन नहीं; साध्य है, वर्णन-शैलियाँ नहीं, वर्यं वस्तु है । इसीलिए 'कवित रत्नाकर' की प्रथम तरंग में उन्होंने अपनी श्लेष रचनाओं का संग्रह किया है और उसका नाम 'श्लेष-वर्णन' रखा है ।

इनकी रचनाओं में शृङ्गार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शांत रस मिलता है, किन्तु शृङ्गार रस का प्राधान्य है । इस रस के आलंबन नायक नायिका है । यद्यपि नायक-नायिकाओं के स्वाभाविक सौंदर्य-वर्णन के छंद उन्होंने छोड़े लिये हैं, तथापि वे सजीव हुए हैं । ऐसे वर्णनों में कवि ने मार्मिकता से काम लिया है । नायिकाओं में 'मुग्धा' पर कुछ छंद अत्यंत सुंदर बन पड़े हैं । इनके शृङ्गार वर्णन में अश्लीलत्व बहुत कम मिलता है । यह केवल श्लेष वर्णन के कुछ कवितों में ही दिखाई पड़ता है । 'श्लेष' की भाँक में वे कदने, न कदने योग्य उब कुछ कह गये हैं ।

वीर रस के चित्रण में इन्होंने तोंगों की गड़गड़ाहट और ललवाटों की छुनछुनाहट पर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना युद्ध की तैयारी के वर्णन में। राम का सेना एकत्रित करना, हनुमान को सीता की खोज में भेजना, सेतू बांधने का आयोजन करना आदि विषयों की ओर कवि ने अधिक ध्यान दिया है। इसी कारण इनकी रचनाओं में वीर रस का अन्धा परिपाक हुआ है। इन्होंने राम रावण के युद्ध में विन्दी रावण के शौर्य का भी राम के शौर्य के समान ही चित्रण किया है। इससे वर्णन में अधिक सजीवता आ गई है।

उद्दीपन विभाग के रूप में सेनापति या 'प्रकृति-वर्णन' अत्यंत उत्कृष्ट है। तत्कालीन परम्परा के अनुसार पुष्पवाटिका, चन्द्रोदय, शीतल मंद छमीर तथा विभिन्न श्रुतियों के स्थूल स्वरूपों के चित्रण में इन्होंने अल्पम कीराल का परिचय दिया है। प्रकृति के प्रति उनके हृदय में परांगत अनुपम या। कई स्थलों पर प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित हो कर कवि उनके चित्रण का उपयोग करता है, पर परम्परा के कारण उद्दीपन की भावना अशक्त रूप से आती है।

'सेनापति' ने बारह मासों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यद्यपि उसका लक्ष्य भी 'उद्दीपन' ही है तथापि ऐसे भी छंद है, जिनमें कवि ने प्रकृति का न्यतंत्र निर्णय करने का प्रयत्न किया है। सेनापति प्रीति-श्रुति से अधिक प्रभावित ज्ञान बढ़ने है। प्रीति का वर्णन करने में कवि ने अपनी कालोचित भावों को परकृष्टा कर दी है:—

वृष की तानि सेव छहों किन परि,

जलजल के जल निरगत बरग है।

तुलनि धनि, दम शरी भग्नि, सीरी

होर की परि वसो पदी रिखा है॥

सेनापति नैक दुपहरि के दरत, होत  
 धमका विषम, न ज्यो पात खरकत है ।  
 मेरे जान पौनी सीरी ठोर को पकरि कीर्ना,  
 धरी एक वैठि कहें धामै वितवत है ।

दोपहर पश्चात् की उम्र से सारे संसार की व्याकुलता का ऐसा प्रभावशाली वर्णन अन्य कवियों की रचना में दुर्लभ है । ग्रीष्म के भीषण ताप से ग्रस्त हो कर किसी ठंडी जगह में बैठ कर पवन के विधाम करने की कल्पना एक दम नवीन है । ऐसे सुन्दर वर्णन शृङ्गारी कवियों की रचनाओं में बहुत कम मिलेंगे । इसी प्रकार वर्षा और शीत ऋतु के वर्णनों में भी कवि ने अपनी अपूर्व प्रतिभा और कल्पना शक्ति का परिचय दिया है । उनके ऋतु-वर्णन और बारहमासे को पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि सेनापति ने प्रकृति का सज्जम निरीक्षण किया था ।

सेनापति के ऋतु-वर्णन में प्रत्येक ऋतु में राज-महलों की स्थिति विशेष के वर्णन भी पाये जाते हैं । इसका कारण यह है कि तरकोलीन शृङ्गारी कवियों का अधिकतर जीवन राजदरबारों में ही व्यतीत होता था । वे अपने आश्रयगता के वैभव-सिंहास तथा सत्सम्बन्धी वस्तुओं राज-महल, वाटिका आदि—के वर्णनों से अपनी लेखनी को कृतकृत्य किया करते थे । सेनापति भी इस परम्परा से अपने को नहीं बचा सके । सेनापति में अन्य कवियों से यह विशेषता है कि उनकी दृष्टि रंगीन दुर्गालों और गरम हम्मामों तक ही सीमित नहीं रही, कभी कभी अलाप बलाकर तापतं हुए साधारण स्थिति के मनुष्यों पर भी पड़ गई है—

“धूम नैन बंद, लोग छागि पर गिरे रहै,  
 दिष्ट छौं लगाई रहै नैक मुनगादं के ।  
 मारना भीन जानि, महाभीत तैं पठारि पानि,  
 छतियां की छुई खखरा पावक द्विराह के ।”

मानव-बोधन की विभिन्न परिस्थितियों में प्रयत्न करके उनका उद्देश्यता पूर्वक अनुभव सेनापति ने किया है।

सेनापति को शब्द-श्लेष अलंकार अधिक प्रिय था। 'कविता सनाकर' में 'श्लेष वर्णन' से आधुनाय छंद शब्द-श्लेष के ही उदाहरण हैं। उनमें अलंकारों का समावेश भी पर्याप्त रूप से हुआ है। अर्थालंकारों में भी समस्त सूक्त अलंकार ही प्रचुरता से पाये जाते हैं। सेनापति ने श्लेष शब्दों के चुनाव में संस्कृत का सहारा नहीं लिया, उन्होंने उन्हीं संस्कृत शब्दों का प्रयुक्त किया है, जो हिंदी में प्रचलित हो गये थे, इससे उनको समझने में पढ़-लिखे व्यक्तियों को अधिक कठिनाई नहीं होती।

यद्यपि सेनापति का रचना-काल भक्ति काल तथा रीतिसाल का संघर्षकाल था, पर भाषा की सञ्चय की दृष्टि से उनको रचना में रीति-वालीन पद्धति के ही दर्शन होते हैं। भक्त कवि काव्य के अंतरंग पर जितना ध्यान देते हैं, उतना भाषा का समझने पर नहीं, परंतु सेनापति ने भाषा-सौंदर्य को बढ़ाने का प्रयत्न विशेष रूप से किया है। उनकी भाषा का सौंदर्य भक्तों की समझने के रूप स्वतंत्र न होकर अलंकारों की सजक मजक के कारण ही है। सेनापति शुद्ध ब्रजभाषा लिखने में दक्ष थे। उन्होंने ब्रजभाषा के साधारण से साधारण शब्दों द्वारा बड़ी सुन्दर रचना की है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का व्यवहार कम हुआ है। विदेशी शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है, जिनमें पारसी भाषा के शब्दों की प्रधानता है।

सेनापति का भाषा में प्रसन्न तथा ओज गुण की प्रधानता है। ओज गुण लाने के लिए उन्होंने शब्दों को द्विवचन करने की परिपाटी का निर्वाह किया है। किंतु ऐसे शब्द बहुधा छाप्यों में ही मिलते हैं। पाठकों की ओर ध्यान का ध्यान अधिक न था। सेनापति की भाषा सुध्वनिपित और परिमार्जित है, उनमें शब्दों के विभक्त रूप अधिक नहीं मिलते।

## सेनापति

सुरतरु सारथी, सँवारी है विरंचि पथि,  
कंचन रचित चिन्तामनि के जराइ का ।  
रानी कमला कौं पिय-आगम कहन हारी,  
सुरसरि सरस्वी, सुरा दैनी प्रसु पाइ की ।  
वेद में पर्यानी, तीनि लोकन की टफुरानी,  
सब जग प्यानी सेनापति के सहाइ की ।  
देव-दुरा-दंडन भरत-सिर-मंडन वे,  
बन्दौं अब संडन सराऊँ रघुराई की ॥१॥  
मूढ़न को अगम, सुगम एक ताकौं खाकी,  
वीर्यन अमल विधि घुट्टि है अयाइ की ।  
कोई है अमंग, कोई पद है समंग, मोधि,  
देसे सब अंग, सम मुधा के प्रवाइ की ।  
ज्ञान के निधान, छंद कोप, पाषधान जाकी,  
रसिक मुजान सब करत हैं गाइकी ।  
सेयक सियापति कौं, सेनापति कवि सोई,  
जाकी द्वं अरथ कावताई निरयाइ की ॥२॥  
तुफन सखित भले फल कौं धरत सूये,  
दूर को चलत जैहैं धीर जिय ब्यारी के ।  
हागत विविध पक्ष सोइत हैं गुन संग,  
सवन मिलत मूल कारति वायारी के ।

सोई सोझ घुनै जाके सर में सुमत्त तीके,  
 देग बिधि जात मन मोहें नर नारी के ।  
 सेनापति कवि के कषित्त बिलसत अति,  
 मेरे जान पान हैं अचूक चावघारी कै ॥३॥  
 न'ही-नाही करं थोरी राँगें सब दैन कहैं,  
 मरान कौ देगि पट देत बार बार हैं ।  
 जिनकौ मिलत भली प्रापति की घटी होति,  
 सदा सब जन-मन भाए निरधार हैं ।  
 योगी हैं इत बलसत आवनी के मध्य,  
 कन घन जोरै दान पीठ परिहार हैं ।  
 सेनापति वचन की रचना बिचारीं जामे,  
 दाता अरु सुम दोऊ कीन्हें इंसार हैं ॥४॥  
 गीतहि सुनारैं तिलकन मलकावैं भुज—  
 मूल न द्विपार्वे द्वार काहूके पयान ही ।  
 बैसतव भेष भगतन की कमाई रह हि,  
 सबैं हरि साहिवैं न साँच है निदान ही ।  
 देस्र के वि.यास नोधी सवतकी तारि होति,  
 मोहि के बिरुध वरैं मन-धन-ध्यान ही ।  
 सेनापति सुमति विचार देखौ भली भाँति,  
 कलिके गुसाईं मानो माँगना समान ही ॥५॥  
 पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धर,  
 जहँ मरि पावी होत सुर पुरपति हैं ।

देखत ही जाकौं भलो घाट पहिनातियत,  
 एक रूप बानी जाके पानी की रहति है ।  
 बड़ी रज राखे जाकौं महा धीर तरसत,  
 सेनापति ठौर ठौर नीकी वे रहति है ।  
 पाप पतियारि के कवल करिवे कौं गंगा,  
 पुण्य की असील तरवारिभी लसति है ॥६॥

द्विजन की जायें मरजाद छूटि जात भेष,  
 पहिले धरन कौं न तन कौं निदान है ;  
 अंग छबि लीन स्रुति घुनि सुनिये न मुख,  
 लागी अब तार है न नाक हू कौं ज्ञान है ।  
 देखिये जयन सोभा पनी जुग लीन माँक,  
 नाम हूँ सौं नातो कृष्ण के सौ कौ खड्ग है  
 सेनापति जायें जग आसा ही सौं भटकत,  
 याही तें बुढ़ापौ कलि काल के समान है । ७॥

कुसलब रस करि गाई सुर धुनि कहि,  
 भाई मन सन्तन के त्रिभुवन जानी है ।  
 देवन उपाय कीनौं यहै भौ चारन कौं,  
 विषद बने जाकी सुरा सम बानी है ।  
 मुखपति रूप देह धारी पुन सील हरि,  
 आई सुर पति तें धरानि सिगरानी है ।  
 तीरथ सर सिरोमनि सेनापति जानी,  
 राग की कशानी गंगा धार सी बयानी है ॥८॥

आके रोज नामे सेस सहस्र बदन पदे,  
 पावत न पार उड सागर सुमात कौ ।  
 कोई म्हाजन ठाकी सरि कौ न पूजे नभ,  
 जल थल व्यापि रहे अद्भुत गति कौ ।  
 एक-एक पुर पीछे अगनित कोठा तहाँ,  
 पहुँचत आप सग साथी सुरति कौ ।  
 बानियै बखानै जाकी हुंठी न फिरति सोई,  
 नाहु धियरानी जू कौ साहु सेनापति कौ । ॥१॥

### ऋतु-दर्शन

धरन धरन तरु फूले उपवन बन,  
 सोई ऋतुरंग संग दल लहियत है ।  
 बन्दी जिमि बोलत विरद धीर कीकल है,  
 गुंजत मधुप गान गुन गहियत है ।  
 आये आस पास पुहुपन की सुवास सोई,  
 सौधे के सुगन्ध माँक सने रहियत है ।  
 मोभा कौ समाज सेनापति सुख साज, आज  
 आवत वसंत ऋतु राज कहियत है । १०॥  
 लसत, कुटज, धन, चम्क, पलास बन  
 फूली सब सारा जे हरति जन चित्त हैं ।  
 सेत, पीत, लाल फूल डाल हैं बिसाल तहाँ,  
 आछे अति अछर जे कारज के भित्त हैं ।



सेनापति माधव महीना भरि नेम कर,  
 बैठे विज कोकिल करत घोष निरत हैं ।  
 कागद रंगीत पे प्रवीन हैं बसन्त लिखे,  
 मानो काम चञ्चल के विक्रम कवित्त हैं ॥३३॥

लाल लाल केशु फूलि रहे हैं विमाल संग  
 स्याम रंग भेंट मानों मसि में मिलाए हैं ।  
 तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंष,  
 मलय पवन उषवत वन धार हैं ।

सेनापति माधव महीना में पलास तरु,  
 देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं ।  
 आवे मनमुलगी मुलगी रहे आवे, मानों,  
 बिरही दहन काम फवैला परचाए हैं ॥ ३४॥

जंठ नजिका ने सुधःत लस खाने तत,  
 ताप तदखाने के सुधारि मारियत हैं ।  
 दोनि हैं मरन्त विवेध जल जंघनि कौ,  
 ऊंचे ऊंचे अश तें मुधा मुधारियत हैं ।

सेनापति शार-गुप्त -- मरगजा साजि  
 भाग, तार-हार मोल ले लै धारियत हैं ।  
 प्रापम के वापर दगाइये कौ सोरे मध,  
 गज भोग राज साज यौ सन्दाखियत ॥३५॥

धृष नो तरनि तंज मर्मा कित्त करि,  
 अखाने द डाल बिरुल परसन हैं ।

तचति धरति, जग जगत करति सीरी,

छाँह काँ पकार पंछी-पंछी विरमत हैं ।

सेनापति नैक दुपहरी के दरत होत,

धमका विषम, ज्यों न पात खरकत हैं ।

नेरे जान पौनों सीरी ठौर को पकरि कोनों,

घरो एक पेठो कहुँ धामें कितवत हैं ॥१४॥

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुबै,

नद-नदी लुएँ कोपि नारत सुभाइ के ।

चलत पवन. मुरम्भात तरवन. वन.

लाग्यो है तवन. डारयो भूतजो तचाइ के ।

भीषम तपत श्नु भीषम सकुचि सातैं,

सीरक छिपी है तह खानन में जाइके ।

मानों सीतकाल, सीतलता के जमाइवे काँ,

राखे हैं किराँच बीज धरा में धराइके ॥१५॥

छूत फुदाँ सोई वसा सगम रितु,

और मलनाइ है भरत किरकाइ भी ।

हेमंत छिछिा हूँ ते धीरे तप राने जडाँ,

दिन नहैं कति गिरति जग काइ की ।

फूले तरवत, फूलवारी फूल लौ भरत,

सेनापति मोभा सो बसत के सुभाइ की ।

भीषम के समै साँभ, राजमहजन साँभ,

पैपति है सभे पट श्नु सहुदाई की ॥१६॥

दामिनी दमक सोई मंद बिइसनि. घग—

माल है विशाल सोई मोतिन कौं हारो है ।  
 वरन-वरन घन रंगित धमन तन,  
 गरज गरूर सोई राजत नगारो है ।  
 सेनापति सावन को वरमा नदल धवू,  
 मानौं है वरति साजि सऊत विगारो है ।  
 त्रिबिध वरन परयो इन्द्र कौं घनुप ताल,  
 पद्मा सौं गटित मानौं हेम रगबागै है ॥७॥

गगन अंगन घना घन तें सवन तम,  
 'सेनापति' नैरुहू न नैन मटकत है ।  
 दीप को दमक, जीगनान को कमक छाँड़ि,  
 घपला घमक और सौं न अटकत है ।  
 रवि गयो दवि, मानौं सखि साऊ रथि गयो,  
 तारे तोरि डोर सन कहुँ फटकत हैं ।  
 मानौ महा विमिर तें भूलि परी बाट ताते,  
 रवि सखि तारे कहुँ गूने भटकत हैं ॥१०॥

'सेनापति' जतमें नये जतन सावन के,  
 पारिहू दिवान घुमरत भरे तोइ के ।  
 सोभा सरसाने, न बसाने जात काहु भाँति,  
 आने है पहा/ मानौं काजर के डौइ के ।  
 घन सौं गगन छयो विमिर सथन भयो,  
 देखि न परय मानौं रवि गयो रोइ के ।

चारि मास भरि रयाम निंसाके भरम करि,

मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ के ॥१॥

खंड खंड सब दिग मंडल जलद सेत,

'सेनापति' मानों स्रंग कटिका पहार के ।

अंधर अहंघर सौ समदि घुमदें द्विन,

छिछंके छिछारे छिति उधिर उछार के ।

तल्लिज सहले मनों मुयां के महल नभ,

तूज के पहल किधौं पवन अघर के ।

पूख को भंजेट हैं, रजत से राजत हैं,

गग गग गाजत गगन घन अघर के ॥२०॥

काठिक की राति थोरी थोरी सिचराति,

'सेनापति' को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं ।

फूले हैं कुमुद, फूलो भालती सघन वन,

फूलो रहै तारे भानो मोती अनगिन हैं ।

बदित विमल चंद, चाँदनी छिटकी रही,

राम कैसो जस अघ ऊरध गगन है

तिमिर हरन भयो, सेत है वरन सब,

मानहुँ जगन क्षीर-सागर मगन है ॥२१॥

घरन्यो कवि न कलाधर को कलंक, तैसो,

को मके गरि, कवि हू को मनि छीनी है ।

'सनापति' वरनो अपूव जुगात ताह,

बोवद त्व वारो कीर भाँव बुद्धि दान है ।

मेरे जान जे विक्रि घौं सो भा होत जानि राखि,  
तेति के कलान रजनो की छवि कीनी है ।  
बढ़ती के राखे, रेनि हूँ ते दिन हो है याते,  
आगरी मयंक ते कला निरुसि लीनी है ॥२२॥

अब आयो भाइ प्यारे लागत हैं ताह, रवि,  
करत न दाह जेसो अब देखियत है ।  
जानियै न जात, यात कहत विलास दिन,  
द्विन झौं न तातै तन कौ विसेरियत है ।  
कल्प सो राति सो तौ सोए न सिराति क्यौ हू,  
सोइ सोइ जागे पैन प्रात देखियत है  
'सेनापति' मेरे जान दिन हूँ ते राति भई,  
दिन मेरे जान सपने में देखियत है ॥२३॥

आयो जोर अब कालौ परत प्रसन्न पालौ,  
सोगन कौ लाली पर-घो, जिये कित जाइके ।  
ताप्यो च है बारि कर तिन न संकत टारि,  
मानौं हैं पराये ऐसे भए ठिठुराइ के ।  
चित्र कैसे लिख्यो, तेज हीन दिन कर भयो,  
आत सियराइ गयो धान पतराइ के ।  
'सेनापति' मेरे जान सात के सताए सूर,  
राखे हैं सकोरि कर अंगर छपाइ के ॥२४॥  
सिधिर में सखि दौ सरुः पाये सविताह,  
भामहू मे चांदिनी की दुति दमरुवी है ।

'सेनापति' होत सीतलता है सहस्र गुनी,  
 रजनी की भाईं वासर में कमकती है।  
 चाहत वकोर सुर-भोर टग छोरे करि,  
 शकबा की छाती तृजि धीरे घसकात है।  
 चद के भरम होत मोद है कुमोदनी कौं,  
 ससि सक पेकाञ्जनी फूल न सकी है ॥२५॥  
 सिंहर दुषार के बुलार से बरामत हैं,  
 पूस धीते होत सूत हाथ-पाइ ठिर कै।  
 शौस की छुटाई की बड़ाई बानी न जाइ,  
 'सेनापति' पाइ बहुत सौंष के सुंगरि कै।  
 सति में सहस्र कर सहस्र चरन हूँ के,  
 ऐसे जाठ भाजितम आवत है फिरि कै।  
 जौ लौं कोक कोकी को मिलत तौशौं होत राति,  
 कोक अधबोच हूँ तें आवत है फिरि कै ॥२६॥

## भूपण

रीति-काल में शृङ्गार की मधुर मुरली बजाने वाले अनेक कवियों के बीच में वीर रस का शंखनाद करने वाले वे प्रमुख कवि थे। ये चित्तमणि श्रीर मतिराम के भाई कहे जाते हैं। इनका जन्म काल सन् १६७० माना जाता है। इनके असली नाम का पता नहीं, चित्रगुट के सोलंकी राजा रुद्रराम ने इन्हें कविभूषण की उपाधि दी थी। कोई इनका असली नाम मतिराम बतलाते हैं, कोई पतिराम। कुछ विद्वान् इनके मतिराम का भाई होने में भी सन्देह करते हैं और दोनों कवियों के आश्रयदाताओं की नामावली का विश्लेषण कर इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि दोनों के आश्रयदाताओं का काल मिला-भिन्न होने के कारण ये दोनों क.व. भाई नहीं हो सकते।

ये कई राजाओं के आश्रय में रहे। अन्त में इनके मन के अनुकूल आश्रयदाता छत्रपति महाराज शिवाजी मित्रे, जो इनके वीर-वाच्य के नायक हुए। पत्रा के महाराज छत्रपति के यहाँ भी इनका अच्छा सम्मान हुआ। करते हैं कि महाराज छत्रपति ने इनकी पालकी में बंधा लगाया था। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि महाराज शिवाजी ने इन्हें एक-एक छंद पर लाखों रुपये और गाँव दिये थे।

कुछ विद्वान् भूपण को शिवाजी का समकालीन नहीं मानते। वे भूपण के आश्रयदाताओं की एक लम्बी सूची देकर यह सिद्ध करते हैं कि उनमें से अधिकांश शिवाजी के समकालीन नहीं थे। भूपण ने मुस्लिम शासन व्यक्ति होकर तत्कालीन हिन्दू राजाओं को प्रोत्साहित करने के लिए शिवाजी का गुण गान किया था। उन्होंने हिन्दुत्व को रक्षा के लिए शिवाजी को आदर्श समझा; शिवाजी के दरबार में रह कर उनकी अतिउपेक्ष पूर्ण प्रशंसा नहीं की।

भूपण के जीवन के संबंध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि भादव के व्यंगवाणों से व्यभिक्त होकर ये घर से निकल पड़े और काव्य स्फुरण प्राप्त कर शिवाजी के दरबार में पहुँचे। दरबार में पहुँचने से पूर्व एक घर्मशाला में सिपाहों केप में शिवाजी को एक कविच अठारह बार सुनाने की वनभ्रुति भी चली आती है, किन्तु इन सब का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। यदि इन्हें शिवाजी की समकालीन मान लिया जाय तो यह निश्चय रूप से मानना पड़ेगा कि इन्हें शिवाजी से पर्वत घन प्राप्त हुआ था, क्योंकि भूपण ने शिवाजी की दान-शीलता का वर्णन अत्यन्त विस्तार के साथ किया है।

इनका परलोक-वास संवत् १७७२ के लगभग माना जाता है।

भूपण-रचित 'शिवाजी भूपण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' ये तीन ग्रन्थ ही मिलने हैं। इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थ और इनके लिखे हुए बड़े जाते हैं—'भूपण उल्लास', 'दूषण उल्लास' और 'भूपण हजारा'। 'शिवाजी भूपण' अलंकारों का ग्रन्थ है। इसमें दोहों में अलंकारों के लक्षण और कविच तथा सधेयों में अलंकारों के उदाहरण दिए हैं। उदाहरणों के आलम्बन प्रधानतः शिवाजी हैं। प्रत्येक कविच या ध्वेष में शिवाजी की दान-शीलता, पराक्रम, तलवार आदि का शोभ पूर्ण वर्णन है।

'शिवा बावनी' जीवन कविता का संग्रह है। कहा जाता है कि ये जीवन कविच वे ही हैं, जो कि भूपण ने शिवाजी को प्रथम भेंट पर नाचे थे, पर यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता, क्योंकि कुछ कविचों में ही घटनाओं का उल्लेख है, जो उस समय तक घटित हो नहीं हुई थीं। फुटकर कविता का संग्रहनाम है, इसमें आघोषात कोई ग्रंथ नहीं है।

छत्रसाल नाम के उस समय दो राजा हुए थे—एक पला नरेश और दूसरी नरेश। 'छत्रसाल दशक' में आठ घनाक्षरी और दो दोहे



संग्रहीत हैं, जो पन्ना नरेश छत्रसाल की प्रशंसा में लिखे गये हैं। कहते हैं कि भूपाल ने अपने भाई मतिराम को प्रायः तत्पर रूढ़ी नरेश छत्रसाल की प्रशंसा में भी दो कविता कहे थे; यह प्रथम भी प्रथम रूप में नहीं है, शक्य वाच्य है।

भूपाल की कविता नाभ्य गुणों से युक्त होने के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों से भरी हुई है। भूपाल बड़े सच्चादी थे। उन्होंने शिवाजी के संघर्ष की घटनाओं का यथासंभव वर्णन किया है। शिवाजी की प्रशंसा करना प्रधान लक्ष्य होने के कारण कुछ अतिशयशक्ति का आभास अवश्य मिलता है, पर सत्य की कहीं भी अवहेलना नहीं मिलती। यही कारण है कि अनेक इतिहासकारों ने भूपाल की कविता के आधार पर इतिहास ग्रन्थों की रचना की है।

भूपाल राष्ट्रीय कवि थे। आज 'राष्ट्रीयता' शब्द का जो अर्थ लगाया जाता है, वह उस समय नहीं लगाया जाता था। श्रीरङ्गजेब के अत्याचारों से संवत्त होकर हिन्दू प्रजा ने संगठन की आवश्यकता को अनुभव किया और वह मुस्लिम शासक के विरुद्ध उठ खड़ी हुई। उस समय मुख्यतः शासन होने के कारण विरोधी दल के रूप में थे। वे अब तक विदेशी माने जाते थे और हिन्दू इसी देश के होते हुए भी पोंडित और अत्याचार ग्रस्त थे। इसलिए तत्कालीन राष्ट्रीयता का अर्थ 'हिन्दुत्व' था। भूपाल ने अरमो कविता के द्वारा 'हिन्दुत्व' की भावना भर कर हिन्दुओं को संगठित करने का पूर्ण प्रयत्न किया और मुस्लिम शासन को उखाड़ कर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखे। सौभाग्य से उन्हें शिवाजी जैसा वीर और साहसी सेनानी भी मिला गया। इतिहास में प्रसिद्ध है कि शिवाजी को सौजन-भर श्रीरङ्गजेब से मुक्त करना पड़ा। जिस प्रकार भारत के अंगरेजी शासन से मुक्त होने से पहले 'हिन्दू-अंगरेज-एकता' की कल्पना करना दुर्घट्य था, उसा प्रकार उस समय 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता' की बात करना अरमोचोचन और समय से पूर्व था। निर

शिवाजी ने सारी मुस्लिम जाति को कभी नहीं कोटा, न सभी मुसलमान शासकों को गालियाँ दीं। उनका प्रधान शिकार तो अत्याचारी औरङ्गजेब तथा उसके मंत्री, सेनापति आदि थे, जो हिन्दू प्रजा को कष्ट देते रहते थे। 'बाबर, अकबर, हुमायूँ हद बाँधि गये' के द्वारा भूषण ने उक्त तीनों बादशाहों की प्रशंसा की है, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव किया। औरङ्गजेब ने अपने पूर्वजों की लीक छोड़ दी, अतः भूषण को उसकी निन्दा करनी पड़ी। आक भी जिन मुस्लिम शासकों ने प्रसन्नतापूर्वक अपने राज्यों को स्वतंत्र भारत में विलय कर दिया, उनकी सर्वत्र प्रशंसा दोरही है और हैदराबाद के निजाम के साथ शत्रु का सा व्यवहार भारत सरकार को विषय होकर करना पड़ा, क्योंकि वह अपनी हिन्दू प्रजा को सताता था। इसलिए 'भूषण' कवि पर साम्प्रदायिकता का दोष लगाना बड़ी तर्क ठीक है, जहाँ तक हम रो वर्तमान सरकार को साम्प्रदायिक बताना।

भूषण वीर रस के कवि थे। शृङ्गारी कवियों की शृङ्खला में होते हुए भी वे उससे बिल्कुल अलग रहे। परंतु तत्कालीन कवियों की रचना परिपाटी से वे अपने को नहीं बचा सके। यही कारण है कि प्रतिभाशाली कवि होते हुए भी इन्होंने महाराज शिवाजी की प्रशंसा में स्वच्छंदतापूर्वक किसी प्रबंध काव्य की रचना नहीं की, वरन् रंति-परमरस की शृङ्खला में अपने आपको बकड़ लिया। परिणाम यह हुआ कि इनकी रचना में घटनाओं और भावों की पुनरावृत्ति होगई है। 'शिवराज भूषण' प्रधानतः अलंकारों का ग्रन्थ है, पंगु संस्कृत का अच्छा ज्ञान न होने के कारण भूषण अलंकारों के सही लक्षण देने में कृतकार्य नहीं हो सके। अलंकार शास्त्र के विद्यार्थी को उससे कोई सहायता नहीं मिल सकती।

भूषण की कविता बड़ी ओजस्विनी और वीर-दर्प पूर्ण है। वीर रस के सहयोगी रंज और भवानक रस का समावेश भी उसमें है। शिवाजी की शूरु, बलवान की चमक, दान शीलता आदि का वर्णन बहुत उत्कृष्ट

है। शिवाजी की घाक से शत्रुओं की खियों की दुर्दशा का बहुत ही सजीव चित्र लींचा है। शिवाजी ने कभी भी शत्रुओं की खियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया, शत्रु विजित शत्रु की नाशियों को सम्मान उनके द्वेषों पर पहुँचाने के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। भूषण ने शिवाजी के इस गौरव को श्लेष्य रखते हुए केवल उनकी घाक से ही शत्रु की व्याकुलता का वर्णन किया है; यथा—

“उत्तरि पलंग ते न दियो है धर पै पग,  
 तेऊ सगबग निशि दिन चली जाती है ।  
 अति शकुलार्ती मुरभार्ती ना छिपार्ती गात,  
 बात न सोहाती बोले अति अनखाती है ॥  
 भयन भनत सिंह साहि के सपूत सेवा,  
 'तेगी धाक सुने' अरि-नारी विललाती है ।  
 कोऊ करै घाती, कोऊ रोती पीटि छाती,  
 परे तीनि बेर खाती ते वै बीनि बेर खाती है ॥”

भूषण ने ब्रजभाषा में कविता की है, जैसे कि उस समय के प्रायः सभी कवियों ने की थी। युद्ध का वर्णन करते समय इन्होंने वयों को द्रित्य करने की परिपाटी का निर्वाह किया है; जिनसे श्रोत्र गुण की मात्रा विशेष रोगरहित है। इसके अनिर्दिष्ट इनकी रचनाओं में बुंदेलखण्डी बोली के शब्द भी पर्यंत सदा में मिलते हैं। उस समय तक मुगलमानों का अधिक सम्पर्क और प्रभाव होजाने के कारण इनकी रचना फारसी के शब्दों से मुक्त नहीं रह सकी, पर भूषण ने विदेशी शब्दों को अपनी भाषा का जामा पहनाकर अद्भिभूत किया है। आवश्यकतानुसार ये शब्दों को विहृत करने में भी नहीं चूके हैं।

इनकी कविता में श्रोत्र और प्रभाद गुण की प्रधानता है। अनुप्रासों की छटा सर्वत्र मिलता है, पर उनके फारण कविता बोभल और दुरुद नहीं जाने पाई है।

## भूषण

शिराजी की दान—शीलता

सवैया

साहि तमै सरना गत्र द्वार प्रतिच्छन्न दान को दुंदुभी बाजे ।  
भूषण भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढि मौखन छाजे ॥  
राजन को गन, राजन ! क' गने ? सादिन मैं न इरी छवि छाजे ।  
आहु गरीब नेवाज नश पर तासी तुही सिबराज बिराजे ॥१॥  
( कवित्त )

सुभ सिबराज चूकत । अचत्तार छात्र तुम ही जनत काज पोया  
भरत हो ॥  
तुम्हें खाँडि यात्रे साहि दिनओ सुगाऊँ मैं तुम्हारे गुन गाऊँ तुम दोते  
क्यों परत हो ॥

भूषण भन्त रहि छुत्र मैं नरो गुनाह,

नाहक समुक्ति यह चित्त में धरत हो ।

और यो भननि देखि करत सुदामा सुधि,

मोहि देखि सुधि काहे भृगु की करत हो ॥२॥

मंगल मनोरथ के प्रथमहि दाता ताहि ।

काम धेनु, कामतरु सो गताइ युव है ।

याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि,

तुँहि अनुसार नरु कहु गाइ युव है ।

भूषण भन्त साहितने सिबराज निज,

द्वारत बड़ाय करि दुहँ बराइ युव है ।

दीनता को हाँ श्री मधीनता बिहारि दीह,

द्वारिद का मारि तेरे द्वार आइयुव है ॥३॥

देव हुरी गन गीत सुने बिजु देव करी जन गीत सुनाये ।  
 भूपन आवत भूप न जान, जहान खुमान की कीर्ति गाये ।  
 मंगन को रुख पाल घने पै निहाल करै सिवराज रिभाये ।  
 जान श्रुतँ घरस सरसँ हमरँ नदियाँ श्रुतु पावस पाये ॥४॥

को कविराज विभूषन होते बिना कवि साहित्य को कदाये ?  
 को कविराज सभाजित होत सभा सरखा के बिना गुन गाये ?  
 को कविराज रुखालन भावत भौसिला के मन में बिनुभाये ?  
 को कविराज श्रुतँ गज-दाजि सिनाजीकी मौज मड़ी बिनु पाये ॥५॥

जाहिर जहान जाके धनद समान पेखि—

यतु पासवान यो सुमान चित चाय है ।

भूपन मतव देखे मूख न रहत सब,

आप ही सो जात दुख-दारिद्र बिलाय है ।

रीके ते रलक मॉहि खल भल डारत है,

रीके ते पलक मॉहि कीन्दे रंक राय है ।

लंग लुरि अरिन के अंग को अंग की बो,

दीतो सिष स'द्वय को सहज सुभाय है ॥६॥

काहू पैजावन भूपन जे गड पाल को मौज निहाल रहे हैं ।  
 आवत हैं जु गुनी जन दर्च्यन भौसिला के गुन गीत लहे हैं ।  
 राजन राव सयै हमराव खुमान की धाक धुके यों कहे हैं ।  
 संक नदी, सरखा सिवराज सों भाव दुनी में गुनी निरभे हैं ॥७॥

पीरी-पीरी हुन्ने तुम देत हो मँगाय हम्म,  
 सुवरन हम सौ पराख करि लेत हो ।  
 एक पल ही में लारा हरजन सौ लेत लोग,  
 तुम राजा है के लारा दीने को सचेत हो ।

भूषन भनत महाराज सिवराज बड़े,  
 दानी दुनी ऊपर कहाए केहि देत हो ।  
 रीम्ह हँसि हाथी हमे सब काऊ देत कदा,  
 रीम्ह हँसि हाथी एक तुम ह्यै देत होयना ।

साहि तनै सिव ! तेरो सुनत पुनीत नाम,  
 धाम धाम सब ही को पातक कटतु है ।  
 तेरो जस कारज आज सरजा निहारि रवि  
 मत मोल विक्रम कथा ते उवटतु है ।

भूषन भनत तेरो दान संकलप जल,  
 अचरज सबल मही में लपटतु है ।  
 और नदी-नदन तें कोकनद होत तेरो,  
 कर-कोकनद नदी-नद प्रगटतु है ॥६॥

दू दस पाँच रुपयन को जग फोऊ नरेस वरार फडायो ।  
 कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन का विपलायो ॥  
 भूषन कोठ गरीबन सौ भिरि भीन्हुं ते चलवन्त कहायो ।  
 शौलति इन्द्र समान बड़ी पै खुमान के नेहु गुम नन आयो ॥१०॥

साहि तनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,  
 चाँदनी बितान छिति छोर छाइयतु है ।  
 भूषन भनत ऐसो भूप भौंसिजा है जाको,  
 द्वार भिच्छुकन सों सदाई भाइयतु है ।

महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,  
 दान के प्रमान जाके यों गुनाइयतु है ।  
 रजत की हौस किये हेम पाइयतु जासों,  
 हयत की हौस किए हायी पाइयतु है ॥११॥

सहज सलोल सीत जलद से नील-ढील,  
 पच्यय के पीन देत नहि अफुलात है ।  
 भूषन भनत महाराज सिवराज देत,  
 कंचन को देह जो सुमेरु सो लखात है ।

सरजा सवाई कासों करे कबिताई तब,  
 हाथ की चढ़ाई को बखान करि जात है ।  
 जाको जस टेक सातो दीप नय रसद महि,  
 मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है ॥१२॥

साहि तनै सरजा समस्त्य करो करनी धरनी प रनीकी ।  
 भूलिगे भोज से विक्रम म औ भई बलि वेनुकी कीरति फीकी ॥  
 भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीम ली बेषज भौंसिता ही फी ।  
 नै दुफ रीकि धनेश करै, ललि पेसिदि रीति सदा सिवजी की ॥१३॥

औरत के अन चाढ़े कहा अरु चाढ़े कहा नहि होत चहा है ।  
 औरत के अनरीमे कहा अरु रीमे कहा न भिटावत हा है ॥  
 भूपन श्री शिवराज हि माँगए एक दुनी विष दानि महा है ।  
 मंगन औरत के दरवार गए तो कहा न गए तो कहा है ? ॥१४ ॥

जाहिर कहान सुनि दान के बखान आजु,  
 महादानि चाहि तनै गरीब नेबाज के ।  
 भूपन जवाहिर जलूस जरवाफ खोति,  
 देखि-देखि सरजा की मुक'ब समाज के ।  
 तप करि-करि कमलापति सों माँगव यों,  
 लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के ।  
 वैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,  
 भित्यारी हमैं कीजै महाराज शिवराज के ॥१५॥

यों सिर पै दहरावत द्वाग हैं जाते उठे असमान बगुरे ।  
 भूपन भूधर ऊपर हैं जिनके धुनि धक्कन यों बल हुरे ॥  
 रे सरजा शिवराज दिप कविराजन को राजराज गरुरे ।  
 मुंडन सों पहिले बिन घोखि के फेरि महा मद सों नद पूरे ॥१६॥

ठारन महंग दीसैं आँगन तुरंग हीसै,  
 बन्दीजन धरन असीसैं खसरत हैं ।  
 भूपन दरानैं जगधाक के सम्याने वाने,  
 मालरन मोतिन के भुण्ड मज्जरत हैं ।



महाराज सिवा के नेवाजे कविराज ऐसे,  
 साहि के समाज तेहि ठौर विहरत हैं ।  
 लाल करे पात तहाँ नील मनि करे रात,  
 याही भौंति सरजा की चर्चा करत हैं ॥१७॥

साहि तने सिवराज ऐसे देत गजराज,  
 जिन्हें पाय होत कविराज वे किरि करि हैं ।  
 भूलन कलमलात भूलें सरवाहन की,  
 जकरे जंजीर जोर करत किरि हैं ।

भूपन मँवर मननात घननात घंट,  
 पग मननात मनो बन रहे धिरि हैं ।  
 जिनकी गरज मुने दिग्गज वे आव होत,  
 मद ही के आय गङ्गाव होत गिरि हैं ॥१८॥

ऐसे धाजिराज देत महाराज सिवराज,  
 भूपन जे बाज की समाजें निदरत हैं ।  
 पौन पाय हीन, दग घूँघट में लीन,  
 मीन जल में बिलीन क्यों घावरी करत हैं ?

सबतें चलाक, पित तेऊ कुलि आलम के,  
 रहैं सर अन्तर में धोर न धरत है ।  
 गिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तोर; तीर  
 एक भरि तरु तोर पीछे ही परन है ॥१९॥

## शिवा-शौर्य

जेते हैं पहार भुव मांही पारावर तिन,  
 सुनि के अपार कृपा गद्दे सुख फेल है ।  
 भूपन भनत साहि तनै सरजा के पास,  
 आईवे को वदी सर हौं घनि की पेल है ।  
 किरपान-वख सौं बिपच्छ करिये फे हर,  
 जानि के कितेक आये सरन की गेल है ।  
 मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर,  
 कोट करि सकल सपच्छ किये खैल है ॥२०॥

अमकवी अपला न, फेरत फिरंगे भट,  
 इन्द्र को न चाप रूप धैरख समज को ।  
 भाये धुसा न छाए भूरि के पटल मेघ,  
 गजिघो न बाजिघो है दुन्दुभी दराज को ।  
 भौंसिला के वरन डरानी रिपुरानी कहैं,  
 पिय भे नौ, देखि उदौ पावय के साज को ।  
 घन की घटा न, गज घटनि सतह साज,  
 भूपन भनत आयो सैन सिवराज को ॥२१॥

दुरजन दार मजि-भाजि ये सम्हार चढी,  
 उत्तर पहार हारि सिद्धी तरिन्द तें ।  
 भूपन भनत बिन भूपन वसन, सावे,  
 भूखन पियासन है ताहन को निन्दवे ।

बालक अयाने घाट बीच ही बिलाने कुम्हि,  
 लाने मुख कोमल अमल अरबन्द ते ।  
 हग जल कञ्चन कलित बह्यः कथ्यो मानो,  
 दूबो सोत्र तरनि वनू ग कौ कलिन्द ते ॥२२॥

आये दरवार बिलजाने छगेदार देखि,  
 ज्ञापता करन हारे नेक हून मतके ।  
 भूपन भनत मौनिला के आय आगे ठाढे ।

बाजे मए समराव तुजुक्त करन के;  
 साहि रखो जामि, सिव साहि रखो तकि,  
 और चाहि रखो चक्रि बने व्योंत अनबन के ।  
 मोषम के मानु म. खुमानु को प्रताप देखि,  
 तारे सम तारे गण मूँदि तुरकन के ॥२३॥

चट्टत अवार तब दुंदुमि घुछार घाय,  
 लंघे पारावार बालवृन्द रिपु मन के ।  
 तेरे चतुरंग के तुरंगन के रंगे रज,  
 नाथ ही वदात रज पुंज है परन के ।  
 दृच्छिन के नाथ सिक्काज ! तेरे हाथ घढे,  
 धनुष के साथ गढ कोट दुरजन के ।  
 भूपण अखीसै तोहि कात कषीसै पुनि,  
 घानन के साथ छूटे प्रानतुरकान के ॥२४॥

अटल रहे हैं दि' अंतन कं भूप घरि,  
 रैयाव को रूप निब देस पेख करि कै ।

राना रह्यो अटल यदना करि चाकरी को,

याना तजि भूषन भनत गुन मरि कै ।  
हाड़ा रायठौर, कछवाड, गौर और रहे,

अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डर कै ।  
अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर,

घार एँड धरि तेग धरि गड धरि कै ॥२५॥  
ता दिन अखिल खल मल्लै खल खनक में,

जा दिन सिवाजी गाजी ने करखत हैं ।  
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,

दारगन भाजत न बार परखत हैं ।  
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देख,

भूषन सुकवि बरनत हरखत है ।  
क्यों न ववसाव होदि बेरिन के मुँडन में,  
कोर घन रामदि अंगारे बरसत हैं ॥२६॥

अगर के धूप-धूम उठत जहाँई तहाँ,  
उठत बगूरे उव अति ही अप्राप हैं ।

जहाँई कजाधंत अलापै मधुर रबर,  
तहाँई भूत प्रेत अब करत बिलाप हैं ।

भूषन सिवाजी सरजा के बैर बेरिन के,  
डेरन में पड़े मानों काहु के सराप है ।

पाउत है दिन महजन में मृदंग तहाँ,  
गात्रत मतेग छिप बाप हीइ दाय हैं ॥२७॥

साहि तनै सरजा सिधा के सत्र मुख आय,

कोऊ बचि जाय न गनोम भुव-बल में ।

भूषन भनव मौखिला की दिल-दौर सुनि,

धाक ही मरत मलेन्द्र औरंग के दिल में ।

रातौ दिन रोवन रहत यधनी हैं सोरु,

परोई रहत दिली आगरे रुफल में ।

कजल कलित अँसुवान के समंग संग,

दूनो होत रोज रंग यमुना के जल में ॥२५॥

### छाप्य

मुंढ कटत कहूँ कण्ठ नटत कहूँ मुण्ड पटत पन ।

गिद लखत कइँ सिद्ध हँसत सुर पृद्वि रहत मन ॥

भूढ फिरत करि वूढ भिरत सुर दूढ फिरत हँड ।

बंदि नबत गन मॉदि रचत धुनि ढण्डि मचत जँड ।

इमि ठानि पोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल ।

बिबराजि साहि सुव रग बल दलि अडोल बइलोल दल ॥२६॥

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चीड़,

सरजा सिधाजी जंग पीतन चलत है ।

भूषन भनव नाद विहद नगारन के,

नदी नद मद गल्परन के रहत हैं ।

पेल-पैल, पैल-मैल खलक में गैल गैल,

गज्जन की ठेल पैल सैल बसलत हैं ।

पारा सो तरनि-धूरि धाग में लगत, जिमि,

पारा पर पारा पाराधार यो हलत है ॥३०॥

प्रेतनि पिसाचदरु तिसाचर निसाचरिहु,

मिलि मिलि आपुस में गावत पधाई है ।

भैरो भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,

जुत्य-जुत्य जोगनि जनाति जुरि प्पाई है ।

किककि किककि के कुतूहल कानि काली,

दिम दिम डमरु दिगम्बर बजाई है ।

सिवा पूछें सिवा सो समाज आजु कहाँ बली,

काटू पै सिवा नरेस भृकुटी चढाई है ॥३१॥

सवन के ऊपर ही ठाडो रहिये के जोग,

वाहि खरो कियो जाय जारन के तियरे ।

जाति गैर मिसिह गुपीले गुसा धरि बर,

कीन्हों ना सलाम न वचन बोले सियरे ।

भूपन भनत सहस्रवीर बलकन लाभो,

सारी पातसाही के उड़ाय गये लियरे ।

तमकते लाल मुख सिवा को निराल भव,

एवाह मुख नौरंग सिवाह मुख वियरे ॥३२॥

छूटत कमान और वीर गोली धानन के,

मुसकिल होत मुरचान हु की ओट में ।

वाही खनै सिवराज हुकुम क हल्ला कियो,

दावा बाँधि परो दस्ता धीर भट जोट में ।

भूपन मनव तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहाँ,  
 किम्मत इहाँ लागि है जाकी भट मोट में ।  
 ताव है है मूँछन कंगून पे पाँव दे दे,  
 अरि मुग चाव दे दे कूदे परै कोट में ॥३३॥

गरुड को दावा सदा नाग के समूह पर,  
 दाव नाग जूह पर धिह सिर ताज को ।  
 दावा पुगहूत को पदारन के कुल पर,  
 पच्छिन के गोल पर दावा सदा धाज को ।  
 भूपन अग्रंड नव रण्ड महि मंडल में,  
 तम पर दावा रवि किरन समाज को ।  
 पूरव पछाँद देम दच्छिन ते उत्तर लौं,  
 जहाँ पातसाही तहाँ दावा शिवराज को ॥३४॥

जिन फन फुनकार चहत पदार भार,  
 कूरम कठिन जनु कमल विदतिगो ।  
 यिप जाल व्यालामुखी लय तीन होत जिन,  
 मारन चिकारि मद दिग्गज उगतिगो ।  
 कीन्हों जेहि पान पय पान सो जहान कुल,  
 कोलहू चद्वलि जल-सिन्धु गत भतिगो ।  
 मगम खगराज महाराज शिवराज जू को,  
 अखिल भुजंग मुगबहल निगतिगो ॥३५॥

## धनानन्द

**जीवन परिचय**—इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था। ये जालि के जायस्य और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी थे। अपनी योग्यता के बल पर ये दफ्तर के साधारण लेखक की हैसियत से इस उच्च पद पर पहुँचे थे। कहते हैं कि ये पारसी भाषा में अबुलफजल के शिष्य थे और फारसी भाषा में भी कविता करते थे।

लौकिक प्रेम से प्रारम्भ करके किछ प्रकार भाङ्ग श्लोक अलौकिक प्रेम की ओर अग्रसर होते हैं, इसके अनेक उदाहरण भारतीय इतिहास में मिलते हैं। धनानंदजी के संबंध में भी ऐसा ही कहा जाता है। कहते हैं कि ये मुजान नाम की एक वेश्या से प्रेम करते थे। कुछ दरबारी धनानंदजी की इस बात को लेकर उन्हें राज दरबार में नीचा दिखाने का अवसर देँदा करते थे। एक दिन कुर्चियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुन्शी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह से इन्होंने बहुत डोलमडोल किया। इस पर लोगों ने कहा कि ये इस तरह नहीं गाएँगे, मुजान वेश्या यदि कहेगी, तो गा देंगे। ऐसा ही हुआ। धनानंदजी ने बादशाह की ओर पीठ तथा मुजान की ओर मुँह करके ऐसा सुन्दर गाना कि बादशाह मुग्ध हो गया, किन्तु उनकी धृष्टता पर क्रुद्ध होकर इन्हें शहर से निकाल दिया। चलते समय इन्होंने मुजान से भी चलने को कहा, पर वह तैयार नहीं हुई। इस पर धनानंद को वैराग्य उत्पन्न हो गया और लौकिक प्रेम की धार ईश्वरोन्मुख होगई। ये वृन्दावन जाकर निगार्थ सम्प्रदाय के साधु होगये। परंतु अपनी कविता में इन्होंने 'मुजान' को नहीं छोड़ा। मुजान शब्द अथ वेश्या का नाम न रह कर उनके आराध्य कृष्ण का प्रतीक होगया।

बादशाह के आक्रमण के समय बदनो द्वारा इनकी हत्या हुई। कहते हैं कि कुर्चियों ने वृन्दावन में भी इनका पीछा न छोड़ा। पर



नादिरशाह के सिपाही लूटते-लूटते वृन्दावन आये तो लोगों ने उन्हें बताया कि यहाँ बादशाह का एक मीर मुन्गी रहता है, उसके पास बहुत सा धन है। सिपाही 'ज़र-ज़र-ज़र' कहते घनानंदजी की ओर दौड़, परंतु घनानंदजी ने 'रज-रज-रज' कहकर तीन मुट्टी धूल उनकी ओर फेंकी। सिपाहियों ने क्रोधावेश में घनानंदजी को समाप्त कर दिया।

**ग्रन्थ** — घनानंदजी के इतने ग्रन्थों का पता लगता है—सुबान-सागर, गिरह-लीला, कोकसार, रस केसिपत्नी और कृष्णमणि। कृष्णमणि संबंधी एक विशद ग्रन्थ भी इनका मिलता है, जिसमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इनकी 'गिरह-लीला' ब्रजभाषा में पर फारसी के छंदों में है।

**काव्य-विशेषता** — ये कृष्ण भगवान के भक्त थे। सुबानसागर की रचना यद्यपि इन्होंने भक्ति के आवेश में ही की है, किन्तु उसमें भक्ति के तत्त्व उतने नहीं हैं, जितने शृङ्गार के। अतः घनानंदजी को वास्तव में शृङ्गार का ही कवि मानना चाहिए। इनकी कविता में प्रेम की पीड़ा की व्यञ्जना बहुत ही हृदयस्पर्शी हुई है। प्रेम मार्ग के अधिक ही इनकी कविता का सचा रसास्वाद कर सकते हैं। इन्होंने स्वयं कहा है—

“उमुझै कविता धन आनंद की हिय, आँखिन नेह की पीर तकै।”

इनकी कविता में भाव पद की प्रधानता है। आलंबन और उद्दीपनों का वर्णन इनमें कम मिलता है। हृदय पद की प्रधानता होने के कारण इनकी कविता में प्रेम के ऊपरी आडम्बरों का वर्णन कम मिलता है। प्रेम दशा की व्यञ्जना इनकी कविता का प्रधान गुण है। इन्होंने प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्घाटन अत्यन्त सुन्दर और उद्दृष्ट किया है। इनकी रचना में बगह-बगह विरोधाभास के द्वारा प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास मिलता है।

यद्यपि घनानंदजी ने शृङ्गार के संयोग पद को भी लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही इनकी दृष्टि अधिक रही है। वियोग में भी

बाढ़गी ताप और तड़पन आदि का वर्णन न होकर हृदय को वेदना के ही चित्र अधिक हैं। पवन-दूत से विरही का यह निवेदन कितना मर्मस्पर्शी है:-

“एरे वीर पौन तेरो सबै और गौन, बारी  
तो सो और कौन मनै टरकौ ही बानि दै।

जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान घन—  
आनंद निधान सुख दान दुखियानि दै ॥

जान उजियारे गुन भारे प्रति मोही प्यारे,  
अन हूँ अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।

विरह व्यथा की भूरि आँखिन में राखी पूरि,  
धूरि तिन पायनि की हा हा नैकुआनि दै ॥”

घनानंदजी न भाषा पर अचूक अधिकार था। भाषा इनकी वर-पत्निनी सी होगई थी, उसे ये जिधर जिध भाव में चाहते, टाल लेते थे। इनकी रचना में आकर भाषा को प्रीढ़ता प्राप्त हुई। बंधी हुई प्रणाली से हटकर उसने आवश्यकतानुसार नया मार्ग अरनाया। घनानंदजी ने भाषा की अर्जित शक्ति से ही काम नहीं लिया, बल्कि उसे अपनी अतुरम प्रतिभा के द्वारा शक्ति प्रदान की। अपने भावों को सुन्दर रूप से व्यञ्जित करने के लिए इन्होंने भाषा का वैषट्क प्रयोग किया। सबसे प्रधान और नई बात, जो घनानंदजी की भाषा में है, वह है उसकी लाल्यशक्ति। लाल्यशक्ति मूर्ति मता और प्रयोग वैचित्र्य की अनुपम छुटा इनकी रचना में मिलती है। कर्सी-कई स्निग्ध, सरल और प्रवाहमयी भाषा का रूप भी दृष्टिगोचर होता है।

घनानंदजी अलंकारों के फेर में नहीं पड़े। विरोधाभास भावों की उत्कटता और प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। अन्य अलंकार वो स्वभावतः आगये, आगये हैं।

इन्होंने शुद्ध मन्त्रभाषा में कविता की है। भाषा की शुद्धता और मापुर्ण्य की दृष्टि से रसायान के अतिरिक्त अन्त करि इनके अनकट होने का दावा नहीं कर सकता।

## घनानन्द

### सवैया

नेही महा प्रज्ञ भाषा प्रवीन औ सुन्दरताई के भेद को जानै ।  
 जोग वियोग की रीति में कविद भाषना भेद खरहर को ठानै ।  
 आइ के रंग में मीठयो हिया बिछुरे मित्रे प्रीतम सांति न माने ।  
 भाषा प्रवीन सुद्वन्द सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै ॥१॥

प्रेम सदा अति ऊंचो लहै सुछहै इहि भाँति की याउ छकी ।  
 मुनि केँ सब के मन लालच दोरे पै दोरे लखें सब बुद्धि चकी ।  
 जग की कबिताई के धोखे हैं एाँ प्रवीनानि की मति जाति जकी ।  
 समुक्तेकवित्त घन आँनद की द्विय भाँखिन नेह किपीर वकी ॥२॥

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,  
 कैसे रहैं प्रान जो अनाख अरसाय हो ।  
 तुम हो वदार दीन-दीन आनि परयो द्वार,  
 मुनिप पुकार याहि कौ लों तरसाय हो ।  
 चावक है रावरो अतोरयो मोहिं आवरो सु-  
 ज्ञान रूप पावरो वदन दरसाय हो,  
 विरह नसाय दया द्विय में वसाय आय,  
 हाय कय आँनद को घन धरसाय हो ॥३॥

पहिले अपनाय सुजान सैह छौं क्योँ पिरि नेह को तोषिषू ।  
 निरधर अवार दे धार मँकार दई गहि वैदैन बारिषू ॥  
 'घन आनन्द' आपने चातक हों गुन बाँ धल मोहन छारिषू ।  
 रस प्रभाव कथाय बढ़ाय क अल वसल में याँ विष बारिषू ॥४॥

आसा गुन बाँधि के भरोसो-सिद्ध क्वी धरि,  
 पूरे पत सिधु में न बूडत सकाय हौं ।  
 तुल्य दूष द्विष जारि अन्तर उदंग आव,  
 निरन्तर रोम-रोम आधनि तषाय हौं ।

साज लाल मँलिन को दुसद दसाति जानि,  
 साइस सद्धार सिर आरे नै चलाय हौं ।  
 येसे, पत आनन्द, गही है तेक मन मोहि,  
 येरे निरदई वोहि दया सपनाय हौं ॥५॥

अधिक अधिक तें सुजान रीति रावरी है,  
 कपट धुगो दे फिरि निपट करौ मुती  
 गुननि पकरि ले निपात करि छोरी देह,  
 मरहिन जीये महा विषम दया हुरी ।

हां न जानी कौन धाँ है या मैं सिद्धि स्वाये की,  
 लाली कपो वरति त्वारे अन्तर कथा हुरी ।  
 कैसे आसा द्रुग पे वसरा लड़े प्रान-रग,  
 पसक निहाई पत आनन्द तई जुरी ॥६॥

घेरे घेर पौन तेरो सर्वे ओर गौन घागी,  
 होमो और चीन मने दर कोही घानि दे ।  
 जगत के प्राण ओछे बड़े छों घमान घन-  
 आनन्द निभान सुख दान दुखियानि दे ।  
 जान उजियारे गुन भारे अति मोही प्यारे,  
 अथ है अमोही बडे पोठि पहिचानिदे ।  
 विरह-वध्या की मृरि ओरिन में रागों पूरि,  
 घूरारतन पायन की हा हा नेकु आनि दे ॥७॥

कारी क्रूर कोकिल-कहाँ को बेरे कादति री,  
 कूँ कूँकि अबही करें जो किन कोरि लै ।  
 पैस परे पापी पे कलापी निम सौम ज्यों हीं,  
 चातक पातक त्यों ही लुहूँ कान कोरि लै ।

\* हिंद के घन प्राण जीवन मुजान बिना,  
 जानि कै अथेली सध घेगौ दल जोरि लै ।  
 जो लौं करें आयन विनोद वरभावन घे,  
 लौ लौं दे डगरे व'मोद घन कोरि लै ॥८॥

जीव की बात जनाइये कर्षे करि जानकशाय अजाननि आगौ ॥  
 तोरनि मारि के पीर न वावत एक सो मानत मोइयो रागौ ॥  
 ऐसी एनी घन आनन्द-आनि जू आन न सुमत सो विन त्यारौ ॥  
 प्राण मरेगे मरेगे पिये पं ६ मंही के व'पूयो सोइन रागौ ॥९॥

तोहि सब गावे एक तोहि को बठावै वेद,  
 पावै फल प्यावै जैस भावनानि भरि रे ।  
 जल-यल ज्योपी अरु अन्तर जामी उदार,  
 जगत में नाम जान राम रह्यो परि रे ।  
 एतें गुन पाय हाय छाय घन आनन्द यों,  
 कैधौ मोहि दंस्यो निरगुन ही छपरि रे ।  
 जरी बिरहागनी में कौ हौ पुकार कासों,  
 दुई गयो तू हूँ निरदुई ओर दरि रे ॥१०॥

परकारज देह को धारे फिरौ पर खन्म ज्यारय हौ दरसो ।  
 निधि नीर सुधा के समन करे सब ही विधि सज्जनता सरसौ ।  
 'घन आनन्द' जीवन दायक हौ, कछु मेरियो पीर हिएँ परसौ ।  
 कछुँ बा पिसासी सुखान के आँगन मो अँसुवान को लै परसो ॥११॥

चितको नित नीकें निहारन ही तिनको अँसुयाँ अब रोवति है ।  
 पल पाँ बहे पायँन थ'यँन सो अँसुवान के धारनि धोवति है ।  
 घन आनन्द जान सजीवन कौ, सपने बिन पायेई रोवति है ।  
 न सुली मुँदी जानि परै कछु ये दुख हाई जगे पर सोवति है ॥१२॥

जा हित भात को नाम जसोदा सुयंघ को चन्द कला पुल धारी ।  
 सोमा समूह मई घन आनन्द मूरति रंग अनंग जिवापी ।  
 जान महा सहजै भिन्नवार उदार बिलास में राख बिहारी ।  
 मेरो मनोरथ हू बहिष अरु हे मो मनोरथ पूरन कारी ॥१३॥

तुम ही गति हो, तुमही मति हो, तुम ही पति हो अति दीनत की ।  
 निज प्रीति करो गुन हीननिर्धौ यह रीति सुजान प्रवीनतकी ॥  
 घरसौ 'घन आनंद' जीबन को सरसो सुधि चातक छीनत की ।  
 मृदु तो चित के पन प इत के निर्ध हो । इतकें रुचि मीनत की ॥१४॥

वे ई कुंज पुंज जिन तेरे तन वादतु हो,  
 तिन छाँड़ आँँ अघ गहन सो गहिगो ।  
 सरित सुजान चैन बीचिन सों सीची जिन,  
 वही यमुना पें हेली यह पानी बहिगो ।  
 वही सुख अम स्वेद समे को सहाय पौन,  
 नाहि छिपे देह देया महा दुख दहिगो ।  
 वे ही घन आनंद जू पीयन को देते तिनही,  
 को नाम मारिन के मारिबे को रहिगो ॥१५॥

अमल अपूरव उजागर अखंड नित,  
 जाहि चाहि चंदिहि चित्ताइबो कलंक है ।  
 तारनि प्रकासे मित्र मंडल में मँहन है,  
 बन घन राजें रस नाथक निसंक है ।

आनंद अमृत कंद धंदनीय प्रातनि को,  
 सुखमा संपत्ति हेरे काम कौन रंक है ।  
 चाहें चकोरिन कौं चौपनि सों लख लेत,  
 कृपा चन्द्रिका में नन्द नन्दन मयंक है ॥ ६॥

क्यों हठ कै सठ साधनु भोषतु होत कहा मन यो तरसे तैं ।  
 हाथ चढे जिहि त्याग मुजान कहूँ जिहि पावन रे परसे तैं ।  
 नीर स मानस हौँ रस रासि विराजत नै सफु डा सरसैं तैं ।  
 ऊसर हूँ सर होत लखें घन आनँद' रूप कृपा वरसे तैं ॥१७७

साधन पुंज परे अन्लेखे पै मैं अपने मन ए कौन लेखयो ।  
 जे अतरखे कर्म नमें 'कनहूँ वित सोच कछु न बिसेखयो ।  
 वातें सपै तजि त्याग मुजान सो साहम औरे दिपैं अवरैखयो ।  
 प्रान पपीहन को 'घन आनँद' पीव रसीली कृपा करि देखयो ॥१७८॥  
 आय जो वाय तौ भूँ सबै सुख भीषन मूरि सन्हागत क्यों नहि ?  
 कष्टि महागति तोहि कहा गति बैठे बनेगी बिचारत क्यों नहि ?  
 नैननि संग फिरि भटक्यो पले मूँदि सरूप निहारत क्यों नहि ?  
 त्याग मुजान कृपा घन आनँद प्रान पपीहन पारत क्यों नहि ॥१७९॥

हरि कै हय मैं जिय मैं लुष से मटिमा फिरि और कहा कहियै ।  
 दरसै नित नैननि घननि हि मुसकयानि सो रंग महा लखियै ।  
 घन आनँद प्रान पपीहनि को रस पावनि इयावनि हे बहियै ।  
 वरि केऊ कनेक उपाय मरौ दसैं शीवानि एक कृपा बहियै ॥१८०॥

काहे कौँ सो'प मेरे जियरा पनी तोहि कहा बिधि वातनि की है ।  
 हे 'घन आनँद' त्याग मुजान सम्भारि तू पातक हयो मूरणी है ।  
 ऐसे रसासूत पुंजदि पाइके वो सठ साधन छीला छी है ।  
 आकी कृपा नित द्याप रही दुख तप तें वार बचाव ही की है ॥१८१॥



कोर कृग बल दुबरो है करि क्यों नडि साधन के सब साधौ ।  
 लीन के लोमन प्रान्त मनौ किन कोर समार्धदि ऐंषि अराधौ ।  
 मेरे कृग 'वन आनंद' है रख भोजें सदा जिदि राधिका साधौ ।  
 ता दिन ते भ्रम मूल से हैं भ्रम मूल लई मुन एक न आधौ ॥२२॥

साधन जितकते असाधन के नेग लगौ,  
 साधन को महा मत संर गदि ताहि तू ।  
 प्रेम सों रतन जाते पाइहै सदन ही में,  
 धई नाम रूप मु अनूप गुन चाहि तू ।

राधिका चरन नर चंद त्यों चकोर के से,  
 वादतु अमंद यों तरंगिन समाहि तू ।  
 पोहति विषास हू चढ़ाइ लं है सोइ हा हा,  
 कृष्ण कृपा विधु मेरे मन अवगाहि तू ॥२३॥

रसिक रंगीले भली भौंतिनि छवीले धन,  
 आनंद रखीले भरे महा सुख खार हैं ।  
 कृपा धन धाम श्याम सुंदर सुजान मोद,-  
 मूरति सनेही विना चूर्कें रिक्तार हैं ।

पाइ आल बाल औ अचाह के कल्प तरु,  
 कोरति मयंक प्रेम सागर अपार हैं ।  
 नित हित संगी मन मोहन त्रिभंगी मेरे,  
 प्रानति अधार नंद नंदन चदार हैं ॥२४॥

बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे,  
खरे अखरति भरे हैं सदि जान कौं ।  
कहि कहि आवन संदेसौ मन भावन कौ,  
गहि गहि राखत हौं दे दे सन मान कौ ।  
भूठी धतियान के पर्यान ते सदास है के,  
अथ न पिरत पन आनंद निदान कौं ।  
अधर लगे हैं आनि करि के पयान प्रान,  
चाहत बलन ये संदेसों को मुजान कौं ॥२५॥

---

## सूर्यमल

ब्रजभाषा की सुरीली तान के बीच ढिंगल का शंखनाद करने वाले कवि राजा सूर्यमल को हिन्दी साहित्य के इतिहासकार चाहे अपना न मानें, इतिहासों में उनका नामोल्लेख करना भी उचित न समझें और उनके साहित्यिक महत्त्व को आँकने में खाने या अनजाने असमर्थ रहें, पर सूर्यमल हिन्दी के ये और हिन्दी के रहेंगे। आदिकाल के ढिंगल या राजस्थानी के एसो-कारों के ग्रन्थों का अन्वेषण और अनुशीलन करने के लिए आज के विद्वान् मरसक प्रयत्न करते हैं, परंतु कितने खेद की बात है कि आधुनिक काल से कुछ ही पूर्व के इस कवि के संबंध में उनकी खोज और अनुशीलन का द्वार बंद सा होजाता है। जो हो, इससे सूर्यमल की काव्य-गात्मा में किसी प्रकार की कमी नहीं आ सकती।

इनका जन्म चारणों की मिश्रण शाला के एक प्रतिष्ठित कुल में संवत् १८७२ में बूंदी में हुआ था। इनके पिता का नाम चंडीदान था। ये बूंदी दरबार के प्रधान कवि थे। इन्होंने ६ विवाह किये थे, पर इनके कोई संतान नहीं हुई। अतः इन्होंने मुयारीदानजी को गोद ले लिया।

सूर्यमल बड़े विलासी थे। व्यवहार में बड़े रूखे थे। दिन-रात शराब के नशे में चूर रहते थे। यहाँ तक कि अपनी एक छी की अंत्येष्टि-क्रिया में भी ये शराब पीकर गये थे। नशे में इनकी काव्य-स्फुरणा बड़ी चल-वती होजाती थी। दोनों और बैठे हुए दो-दो लेखक भी इनकी वाणी से निःसृत कविता को लिखिबद्ध करने में असमर्थ होजाते थे। सद्दय कवि होने के साथ साथ ये उच्चकोटि के विद्वान् भी थे और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ढिंगल आदि कई भाषाएँ जानते थे। ये इतिहास के भी अन्वेषक थे। इनका देहान्त संवत् १३२० में हुआ।

सूर्यमल के लिखे हुए चार ग्रन्थ मिलते हैं—वंश मास्कर, मलवंत-विनास, छन्दोमयूय और वार सतसई । इनके सिवा इनके फुटकर कविय उद्देश्ये भी मिलते हैं । यश मास्कर इनकी सर्व श्रेष्ठ और सर्व प्रिय रचना है । इसका रचना-काल सवत् १८६७ है । इसमें बूँदी राज्य के साय-साय राजस्थान का इतिहास वर्णित है । यह बड़ा विशद ग्रन्थ है । इसमें सेनाओं की सजावट, युद्ध की भयंकरता, तलवारों की चमक, हाथी-घोड़ों के युद्ध आदि के वर्णन बहुत सजीव हैं । जिस समय सूर्यमल युद्ध का वर्णन करने लगते हैं, उस समय वे किसी बात को श्रुती नहीं छोड़ते । युद्ध संग्रहों किसी भी विषय को अल्पता से नहीं देखते । वीरों के बयनाद से लेकर मास के लोभ से लाशों पर बैठे हुए गिद्धों तक का वर्णन उसमें एक ही भावुकता और एक से चमत्कार के साथ किया है । यथा—

“उमेद दिनेस रन्यो राग खिल । दुरयो सठ धुधुव दुग्ग दलेल ॥  
 फई अरि खुपरि टोपन फारि । यहै बन सन्नुबतंति तवदारि ॥

× × ×

रहे कित गिदन को गल लाय । फई कितदू ख ऐंचत हय ॥  
 बकै कति मात पिता तिष वेन । गिरै कति मोहित उन्धलि गैन ॥”

वीर रस का जेठा भावानुरंजिन और शीघ्र पूर्ण वर्णन सूर्यमल ने किया है, वैसा अन्य कवियों ने नहीं । वीर रस के अन्य कवि तो 'वीर' के साय-साय रहकर उसी की यश-गाथा में अरनी कृतार्थता समझते हैं, पर सूर्यमल ने पात का युद्ध में भेजने वाली वीर-रमणों की मनोदशाओं का वर्णन भी बहुत ही स्वाभाविक किया है । वीर-बाला रणभूमि में गये हुए पति की चिन्ता में मग्न है, पर वह नहीं चाहती कि उसके पति भाग पर घर आवे । यह गून्ना मित्रने पर कि पति भागा हुआ पर ही और आरदा है । उसके दुःख की उमा नहीं रहता । यह आपर पति को देखकर कहती है—

“पूतों ने देटा धिया, घर में बधियो जाल ।  
 श्रव तो छोड़ो भागणो, बत लुभायो बाल ॥”  
 “यो गदणो यो मेठ श्रव, कीजे धारण बंत ।  
 हूँ बौगण किय कान री, चूड़ा खरच मिटंत ॥”

अपने पति के लिए तलवार की तेज धार करने के लिए वह  
 ‘सिकलीवरनी’ की आदेश देती हुई कहती है—

“असिधावण तो पीव पर, वारी वार अनेक ।  
 रण भटवंता बंत रे, लगै न भगटक एक ॥”

धीर माता अपने पुत्र को भूले में सुन्याती हुई शिक्षा दे रही है—

“इला न देखी आपरी, हालरिया हुलराय ।  
 पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माँय ॥”

ऐसी धीर माताओं के पुत्र उत्तम होने ही किस प्रकार वीरता के कार्यों  
 की ओर प्रवृत्ति रखते हैं, इसका कुछ ग्राम’स इस दोहे से पित्रता है—

“हूँ बलिहारी राणियाँ, वृष सिखानण’ भाव ।  
 नाली बाढ़णरी दुरी, भगटै जणियो साव ॥”

वीर कन्यायें भी उत्पन्न होते ही बीर की ज्वाला से आलिंगन करने  
 को उद्यत रहती हैं—

“हूँ बलिहारी राणियाँ, साँचा गरम सिखाय ।  
 साँचा हन्दै तापर्यै, हरखै घी चित्तलाय ॥”

सूर्यमल ने डिंगल और पिंगल दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है ।  
 घंश भास्कर में चारणों की लिचड़ी भाषा का रूप मिलता है, जिसमें  
 संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का  
 प्रयोग हुआ है । घंश भास्कर की भाषा कठिन बहुत है । इन्होंने अपने  
 गढ़े हुए शब्दों का प्रयोग भी स्वच्छता के साथ किया है । इसीलिए  
 उनके कव्य साधारण योग्यता वाले के लिए कठिन होगये हैं ।

## सूर्यमल

### दोहा

सहणी सचरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह ।  
दूध सजाएँ पूत सम, बलग लजाये नाह ॥१॥

जे खल भग्ना तो सखी, मोता इल सज खल ।  
निज भग्ना तो नाह री, माध न सुनो टाल ॥२॥

हथलेवे ही मूठ किय, हाथ बिलगा माय ।  
लासो पातो हेकलो, चूड़ो मौन लजाय ॥३॥

छमली और निसंक भख, जंबुक राह भ जाह ।  
पण भण री किम पेस ही, नयण विणट्टा नाह ॥४॥

का पुचकारै धण कहै, जाण भणोरी जैत ।  
नौरा जण बापा बियो, हूँ बलिहार कुर्मत ॥५॥

मूल न दोजे ठाणुरी पावक माये पावें ।  
रात रहोजे दाफियाँ, तिया धरोजै चाव ॥६॥

असि भावण तो पीव पर, धारो पार अनेक ।  
रण माटकताँ पंत रे, लगी न भाटक एक ॥७॥

साधण बोक सुखावयें, देखी मो सह दाद ।  
उरसो सेती बीज धर, रजघट उलटी राद ॥८॥

आज धरे सासु फडे, हरख अचण्ड काय ।  
बह बलेवा हससै, पूत मरेवा लाय ॥९॥

देव सहेली मो धरणी, अन्न को बाग रठाय ।  
 मद प्याला खिमि एक लौ, फौजों पीवत जाय ॥१०॥  
 पग पादा छाती धड़क, कालौ पीलौ वीह ।  
 नैण मिचै, सान्दो सुणै, कबण हकालै सीह ॥११॥  
 नाथण आज न मॉह पग, काले सुणीजे जंग ।  
 घागँ लागी जे धरणी, तो दीजे घण रंग ॥१२॥  
 ऊमी गोरव अबेखियो, पैतौ रो दल सेर ।  
 पदियो धव सुणियो नही, लीघो धण नालेर ॥१३॥  
 हूँ पाछे आगँ हुवे, आणी नाद घरेह ।  
 जे चल्ही घण जीवहूँ, आगँ मूक करेह ॥ १४ ॥  
 कंत मला घर आविदा, पठरीजे मो वेस ।  
 अन्न भण दागी चूड़ियाँ, भव दूजे भेटेस ॥१५॥  
 की पर आवे थें कियो, हणिया बलती हाय ।  
 धण धारे घणन नेहदें, लीघो वेग बुलाय ॥१६॥  
 पूगँ रे घेटा दिया, पर में दधियो जाल ।  
 अब तो छोदो भागणों, कंत सुभायो काल ॥१७॥  
 यो गहणो यो वेस अब कीजे धारण कंत ।  
 हूँ-जोगण कण कामरी, चूड़ा सरच मिटन्त ॥१८॥  
 कंत सुपेती देखतों, अन्न की जीवण आसं ।  
 मो थण रहणें हाय हूँ, घाते सुदहें घास ॥१९॥

दरजन लॉबी अंगियां, आणीजै अय मूक ।  
 तय टोटे मोनूं दया, दूख सिबाई तूक ॥२०॥  
 मणिहारी जारी सखी, अय न हवेली आव ।  
 पीव मुवा घर आचिया, विभवॉं किछा वणाव ॥२१॥  
 गधंण फूकी रे मलय, भूँडा आगम मौण ।  
 चलण वदायो अतर धण, मुँदगो लेसी दौण ॥२२॥  
 हँ वलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिध्दावण भाव ।  
 नालो वादणगी छुगी, मपठै जाणियो माव ॥२३॥  
 हँ वलिहारी राणियाँ, सौंषा गरभ मिखाय ।  
 जाधॉं हँदे तापणै, हरलै धी टग लाय ॥२४॥  
 कंत लखीजै दोहि कुच, नथी फिरंतो छाँइ ।  
 मुडियाँ मिलसी गीदवो, पले न धण रो याँइ ॥२५॥  
 देखी की अचरज फहूँ, फंत परा वलिहात ।  
 घर में देखूँ दोय कर, रण में होय हजार ॥२६॥  
 मोला की सर भागियो, अंत न पढ़इ ऐण ।  
 सोजा दीण हुस यह, नीचा करसी नैण ॥२७॥  
 दोम परज सय भेग पद, भर नातेर मुशाम ।  
 धावाँ फंत पधारिया, पौवाँ हँत प्रणाम ॥२८॥  
 रण खेती रणपूत री, घोर न भूलै बाल ।  
 वारद वरगॉं नावरो, सदै घोर लंबाल ॥२९॥



अठे सुजस प्रभुता उठे, अवसर मरियो आथ ।

गरणो घर रे माक्रियो, जम नरकां लेजाय ॥३०॥

पहिल मिले धण पद्धियो, त्रिण कोधा क्तिण हाथ ।

धीजल माहे बोलीगो, दूण हाकण भू आय ॥३१॥

ढोल सुणता मंगली, मूँछी मूँह चढन्त ।

चंवरी ही पहिचाणियो, कंवरी गरणो कंत ॥३२॥

ग्रीव न मांढे देख्यो, फरणो सत्र सिराह ।

परणता धण पेलियो, ओझी ऊमर नाह ॥३३॥

पेटी मीड छिपावयाँ, जाण घाव न जीव ।

हली दिवसाँ पाहुणें, पढवे दीठो पोव ॥३४॥

वल खांघे जण जण वढे, कस बांधें करवाल ।

परल महां अर कायरों, त्रह त्रहियाँ त्रवाल ॥३५॥

सीह न याजौ ठाकुरां, दीन गुजारो दीह ।

हाबल पांढे हाथियाँ, सोमढ याजै सीह ॥३६॥

कायर रो धण यूँ कडे, छाने कंत छिपाय ।

सीत धिकें त्रिण देसडे, साहे सो न दिखाय ॥३७॥

नरा न ठाणो नारियाँ, ईश्वो सगत पह ।

सूरां घर सुरी मइल, कायर, कायर-नेह ॥३८॥

सधो नथी धव जीवतां, अरियो पायो चैन ।

यसनां लोपो गोद में, तो पो मूँछ मुढैन ॥३९॥

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय ।  
पूत सिखावै पालणी, मरण बदाई माँय ॥४०॥  
बैरी पाड़े बाघदो, सदा सणके खाग ।  
हेली कै दिन पाहुणों, उडा भाग मुदाग ॥४१॥  
हूँ हेली अचरज बहूँ, पर में बाध समाय ।  
हांको सुणतां हूलसे, मरणो कीच न माय ॥४२॥  
तन दुरंग और जीवतन, कढ़णौ मरणौ एक ।  
जीव बिखठांजे कढ़ी, नाम रहीजे नेक ॥४३॥  
जिण बन मूल न जावता, गेंद, गिवल, गिदराज ।  
तिण बन जंधुक तास्रदा, अधम मंडै आज ॥४४॥

---

# परिशिष्ट १

कठिन शब्दों के अर्थ और टिप्पणियाँ

## कर्चार

दोहे — (१) नाइको=नायक, स्वामी (२) मीतु=मित्र (३) मूये=मने से (४) प्रिदे [गृह]=घर, माकन=शाक्त, शक्ति का उपासक, बापुरे=वेचारे (५) मुयि मुखि=बुरा चुरा कर । कीनी बारह बाट=व्यर्थ करदी, नष्ट भ्रष्ट करदी । (६) वेङ्गा=नाव, ह्दये ह्दये=इत्के इत्के (१०) बिउ=जो, केस=वाल, (१२) जदु मंत्र=जारों का वाच, सारंगो, कितार आदि (१३) सानि=जोना (१६) वेउना=दौष्ट, भंगार=बाट (१८) खेइ=मूल (१९) सरवग सराङ्ग]=पूर्णरा (२०) सीस=टंडा (२१) तिउ=उसी प्रकार, त्या (२२) हूँ=प्रदभाव, आपा=प्रमिमान, जत=जधर, बहाँ । तत=रहा (२४) कु बरु=श्या, मयमनु=नयाला (२६) सोहन[लोचन]=नेत्र, सउ=ने (२६) रिगत=रंगु, लँगडा (३०) भव=संसार, कुलि=वट ।

पद — (१) अनरद सबद = दृष्टयोग के अनुसार वह नाद जिसका अनुभव योगियों को समाधि—अवस्था में अपने ब्रह्माण्ड में हुआ करता है, सुखित=दान, परसारे=शर्य करे ।

(२) देवत=मन्दिर, तालास [ननाठ]=खोप ।

(३) विराना=वरावा, काँट=भोंया ।

(४) सुगन्ध=गुणो, [ यहाँ जीव ] बिलाई=बिली, यहाँ माया,  
रत्ता=रोता, मशरू=बिली [माया], उदरै=उदर हो ।

(५) त्रिगुन=तीन गुण की रस्सी, तीन गुण—धत, रज, तम ।  
भवानी=भावती ।

(६) मनुर्जा=मन, तेर्जा=ममकीं दुर्ग, देवी दुर्ग, मोरी=मोरी में  
पङ्का दुर्गा, चरै=चर रही है ।

(७) सुनरु=सरीर, परिगरो दाग=हलक लग गया, पाँच तक्ष=  
पंच तक्ष—पृष्ठां, कल, आकाश, वायु और अग्नि ।

मैवा=मैंदर, नम लोके, समुरे=समुपल, संसार ।

(८) बीराना=व गव होवरा, पतिमाना=विरास करना, मरम=  
रहस्य, आतन=आम, देह में स्थित वप, पशने=पश्या, मुदिद=दिग्ग,  
मैदर=दया, निबह करना=रहने करना ।

(९) अमर=नशा, दुनियाई=द्विधा, गनिघ=वेरवा, श्री होवे  
श्री राम का नाम पढ़ाने-पढ़ाने भगवान् से पार हायई ।

(१०) रंग=गज चितर=गोरी है, अरदास=आर्यना ।

(११) प्रनर्वा=प्रप जवन, अर्माव, तीनता=तुला, कपु=कपि,  
प्रविम=प्रति मूर्ध, प्रतिभव, दखनि=शक्ति से, मरकर=मरकर,  
नरत=नरता है ।

(१२) पादन तर=पदों तले, रयता कयो=नैती की ।

# मलिक...मुहम्मद...जार सी

## गोग-यादल-युद्ध

(१) चंडोल=वालकी, सत्रोदल=प्रख-शख से मुमजित, न जाने भानू=युयं को भी पता नहीं था, श्रीदार=वालकी टाँवने की परदा । धैयज्ञ=राजावती, श्रीर वो वेली=अन्य खिरी की कसा बात, अंल= गिरवी, धम नत, तुरि=घोड़ियाँ ।

(२) साँपना=देव रेव में, अगमना=आगे, पडले अँकीरा=धूम, रिशवत, स्यों=साथ, किल्ली=कृष्णी, चारियाँ, पानी भए=रम होगये, चाँद=पद्मावती, जावत=जिनने, नराइं=तारे, नलत तगईं=नदय और तारे ( दासियाँ और सखियाँ ) कविलासु=रङ्गमडल ।

(३) छूँ छि सो... मरी=जो बड़ा खाली था इशर ने फिर मरा, जोहारु=प्रणाम, हुगटि=युक्ति, टपाय, टेकी बाग=लगात संभाली, गहन गरासा=गुदगु नगा था । (४) गीर टी=गुमार के, कटन=नेना, अरुभ=अनगिन्ती, होपत =छिपता हुआ, रोद =रेंद, चौगान =रेंद खेलने का टंडा, जो मैदान गोद लेद जाऊँ =यदि युद्ध में विजय प्राप्त कर लूँ । (५) मीचु =मृत्यु, आउ मरी =आयु पूरी होगई, पूजो = पूरी होगई, समदि =विदा लेकर, पूरप =योद्धा, मधि =अवसर, आव =चमक । (६) दहुँ =देतों, सोदिल =अमत्य तारा, विलाही = भायेंगे, हुंगवै =टीला या धुस, पाछे घालि हुंगवै यजा =यजा खनसेन को पहाड या धुस के पाछे रखकर, जमसातर =यम का खाटा, सोकरे =सहृद में, निगही =निस्तार करूँ, रेंद =रेंदा, अरुशा ।

(७) ओनई = उमड़ी, देव = दैत्य, आरी = बिल्कुल, पूरा, बाटी = धनु  
 दरदानी = दरदानी की तलवार, बानी = बान्ति, मक, गारा = वज्र  
 ंदू = इन्द्र, नेवा = भाला, मोर = मोर ने, टटौनी = घावा, खो =  
 साथ, कुँड = लोहे की टोपी, जो लड़ाई में पानी जाती है, गुण = पोछे,  
 शक्ति = शक्ति। (८) ओनवत = उमड़ती हुई, अमवात = वम वा  
 खाटा, एक प्रकार का खाटा, वगदि सब भवा = सभ पुमते हैं  
 चहदि हरग अपसवाँ = स्वर्ग में चल देना चाहते हैं, सेल = बरसे  
 मुँह = पृथ्वी, खर = रूल, भाला। (९) बगमेल = घोड़ी का गम से  
 बाग मिलाकर चलना, सवारो की वक्ति का धारा, बंध = बंध, निगारे =  
 बिल्कुल यहाँ से वहाँ तक, खुर सेह = खुरो की धूल, भारत = मगभारत,  
 घोर मुद्ध, निबरे = समाप्त हुए। (१०) निपा = गत, कावारु =  
 करवाल, तलवार, खो = उदित, निगारे = चलन, गाठ = राह के बंधे  
 कुण्ड, मभीठ = गहरा लाल रक्त, धूषा = मुका, भभूषा = शकारे का  
 लाल, पाह हाथ बरहु = इसे पकड़ो।

(११) टेका = पकड़ा, गार्हो बोले = उठकी मुनाएँ की बोली है,  
 मुँह से नहीं बोलता है, मुनाएँ राफवती है, भीनु = मनु, बाध, अगरेव =  
 ऐतिहासिक वीरो वं नाम विनिवाश = पनाटे, मक्ति = चलन, बरार =  
 बधिर, रात = लाल अर्थात् बलक रदित। (१२) रातो = गिरने का,  
 मरने पर, राँग = राधा, निदाऊ = निदाई, सोरे का एक टोठ पातु  
 बिच पर मुनार का सोदार किसी वस्तु को रग कर पन से पोछे है।  
 हाँडा = मक, ओइन = टाल, गुदक = गदा, बधि गुदक दूत = बंधे  
 पर गदा थी। (१३) छहर = शादूल, रॉटर = ठठरो, निप संकारु =  
 धातियों के सामने उधार न रह गया, नकर आगन, निगवाना = उर्मव  
 आना, बरी = बलवान, खुर पङ्कनास पान = देवता को नै पान का  
 बीजा प्रथम रग के का निमणय दिया।

## सूरदास

### बाजलीला

(१) मल्लावे = मुलाती है, प्रधर = श्रोत्र, हृदि अंतर = इसी बीच में,  
 (२) अपने रँग खेनत = अपनी धुन में खेत रहे हैं, बिटरि चले =  
 मयभीत होकर भागने लगे, दिग टलिय = दिग्गड, दिशाओं के हाथी,  
 सकेलत = सँभालते हैं, सवट ( शवट ) = गाड़ी, पालना, पेनत =  
 घका लगा रहे हैं।

(३) सपनगत ( स्वप्नगत ) = स्वप्न में लीन, अशित ( अश्वेत ) =  
 जाला, अरुन = लाल, रवि-गत = सूर्योत्त, पन्नगपति = शेषनाम।

(४) नवनत = मरसन, रेनु = धूल, गोरोचन = कुंकुम, रोली,  
 सतकल्प = सी युग।

(५) कुलहि = कलंगी वाली रोपी, मधवा = हनु, सुदेश = सुन्दर,  
 चिभुर = बाल, बगाई = फैलकर, त्रिनयन, सेत ( श्वेत ) = शफेर,  
 लुनाई ( लावण्य ) = सुन्दरता, गुह श्मुर = राजसों के गुरु, शुक्र,  
 देव-गुह = देवताओं के गुरु, बृहस्पति, भीम = महल नक्षत्र, उडित  
 वचन = तातली बातें, अलप = थोड़ा, बलप = बोलना।

(६) वासुकि = सर्पों का राजा, मंदर = एक पर्वत जिसकी रई  
 बनाकर देवताओं और राक्षसों ने समुद्र मंथन किया था।

(७) विधुरि = बिलरी हुई, छिटसी हुई, मुनद्य ( मुनदण्य ) = सुन्दर,  
 बीच कियो बनाइ = बीच में पड़ कर मुनइ कर दी, माये = सुन्दर  
 नीलपुट = नीलम का सम्पुट, पदन = सिन्दूर।

(८) साँटी = छड़ी, अनरनि = अनिच्छा, नाराजी, टाटी = फी,  
 आपने नाटक की परिपाटी = छाप्ट की रचना, बहत न भीर्तः-खाटी =  
 मला युग कुछ नहीं कहती।

(६) खेई वै = ये ही, अमलार्जुन = अमलार्जुन नाम के दो देवता को शाय से गुग्गु वृक्ष के रूप में होगये ये और श्रीकृष्ण ने अमल के द्वारा उनका उद्धार किया, वारन = बराने, मिस, शीष विधाने = बस में है।

(१०) दीठि = दृष्टि, कला = चतुर्गर्द, चसनी = बाँस श्री वंशियो से बनी टोबरी।

### भ्रमर गीत

(१) घोस = ग्वालों का गाँव या मुहल्लो। खैप = राशि, डेर। फाटक = पटवन। हाटक = सोना। धुरहीते = आरम्भ से ही, मूँच से ही भोरिय निपट सुधारी = हमको बिल्बुल मूर्ख समझ लिया है। सवार = सचेरे। गदर = विलम्ब, देरी। (२) दादुर = भेदक। मानै = तोड़ती है, उखाड़ती है। (३) गाँधी = गाँस की बात, फपट की बात, चुभने वाली बात। (४) पुंनै = समूह। घनछार = कपूर। दक्षिमुत = चंद्रमा मुंनै = भूँजे चालती है। करद = छुरी। लूजे = लूले लौंगड़े बर्तन। बरन = रंग। (५) रहतन = वफा नहीं। (६) कुन्तल = पेश, बाल सुरै लई = टग लिया, मोहित कर लिया। समुट तत्रि = प्रकृतित होकर करतै लेन नई = आवर्षण की अवहेलना नहीं की, प्रकृतित होकर प्रेम किया। हेग इई = पाले से मार दी। धन स्वाम = बादल, कृप्य। छिजई = दुर्देल होगई, कमजोर पड़ गई। लई (सरी) = गई, पड़ी। (७) सचु = मुक्त, संतोष। तबरी = मूर्च्छा। चलन = नेत्रो। गदवर = गुण। (८) फालिन्दी = पमुना। सुर = स्वर। पलिवा = पतंग। चूर = चूर्ण। पनारी = सोता, नाली। कच = पेश। म्नात्र = बराने, मिस बिन मानस = विधर। (९) परतति (प्रतति = विश्वास। नेचक = धाले। द्वा दई = विश्वास घात किया, कदा नहीं माना। (१०) प्रघात = नुस होता है। पोरि = काट कर, मोर कर। (११) रंजुकि = बोली। रंयु = बच।



## विनय के पद

(१) पशु = लंगड़ा । पाई = चरण । (२) सूहरणामी = प्रामाण्य नामी = श्रेष्ठ । (३) उधारि = उद्धार करो । मंगल ही = दूबाहुआ हूँ मम अनुनिधि = संसार-सागर । प्राइ = मगर । अनंग = कामदेव । मोट = पोयली, गटकी । सेगार = बल के अंदर उगने वाली घास फूस के षोवे । कूल = तट । (४) विरद = नाम, पद । वनिता = स्त्री । खार = खाल, छोद भाला । (५) किरानो = बीत गया । अनत = अनय, दूषरी जगह । वनिता = पदा । पिय विदुन = बिना पति की पन = स्त्री । (६) कुमत = बुरी सलाह । प्रतिहारे = दारपाल । मुदकम = दह । (७) श्राप श्रापे दई = श्रापको सिपुर्द करदी । हरशई = दीक दीक क खेत खाने वाली । चई देहु = अग्ने बल पर निर्भय का दाशिय । (८) पचत = हेगन होता है । पखारत = घोवा है, तल = रुई । पुड = दीपक । अलेखे = व्यर्थ, किसी दिवार में नहीं आये । (९) चोतना = चोला, पल्ल । पलावम = दोलकी की आकृति का बाबा मंदंग । तुजना (तुणार) = लालच । कधि = मज कर । (१०) अविगत = खो नाश नहीं होवा, निर्गुण ब्रह्म । अंतरगत = मन में । लुगति = मुक्ति । निरलम = आधार रहित । चकृत = चकित, विस्मय युक्त ।

## तुलसीदास

राम—नाम—महिमा

१) गिरा=वाणी, बीचि=तद्वर, कृमानु=अग्नि, अगुन=निगुँव  
 गनरुठ=गणेश, तिवभूरु=खो-शिरोमणि, अमी=अमृत । (२)  
 गालि=वृष, लाहु=लाभ, विनागती=अलग होनाती, सेंघाती=साथी,  
 मुनिअ=सती स्त्री, पूषन=सूर्य, कपठ=कलुआ, करवर, बीह=बिडा ।  
 (३) बरन=वर्ष, अक्षर, नामी=नाम वाता, उगाधी=गुण, उराधि,  
 साधी=सिद्ध करना, उमय=दोनों, दुभासी=दुभाषिया । (४)  
 विरति=वैराग्य, अनानय=रोग रहित, अनिमादिक=अणिमा, गरिमा,  
 लपिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राशाम्य, ईशत्व और वशित्व नामक अष्ट  
 सिद्धिर्वा । हुकती=पुण्यात्मा, अनघ=(अनु+अघ) वाप रहित, आन=  
 अन्य । (५) विपूष हुद=अमृत का सरोवर, बूढे=शक्ति से, बनि=नदी  
 दारुगत=लकड़ी में, अछुत=अद्वन, कमी नाश न होने वाला । (६)  
 बइ=बड़ा, अनयासा=अनायास, एहन री, मुकेतु मुता=मुकेतु की  
 लकड़ी, लाइया, विवाकी=सर्वगत । बलुप=पान । ७) गाय=कषा,  
 मुचष्ट=मुश्रीव, मेराये=कृपा की, प्रसार=कृपा । (८) महुँ=मैं,  
 घगलानि=स्थानि रहित, आरकलानिपूर्वक, मुहुत=मुक्त, आवागमन  
 से रहित । (९) भाँग=भोग जैसा मुच्य वृक्ष, विरोअ=छोक रहित,  
 मुहुत=पुण्यकर्म, मय=यत्, समन=नष्ट होना, अनिमत=रहित ।  
 धनकप्रतिपु=दिररकरपर, मुरतालु=देर ताली अ यतु ।

## विनय के पद

(१) जगवंदन=संसार में वन्दनीय, विधाता=प्रदान करने वाले, उदय करने वाले, मानस=हृदय ।

(२) रावरो=आपका, नाह=पति, मानी=नष्ट कर दो, मित्र दो, सिक्षानी=ईश्यां की, नाक=दरगा, नाक सवारत=स्वर्ग में स्थान देते २, हीं आया नरुयानी=मेरा नाक में दम आ गया, जाचरुता=मोख माँगना जगत-मातृ=पार्वती ।

(३) अम्ब=माता, दायवी=दिलाना, अघो=पापी, कर्हिची=कहना ।

(४) पातकी=पापो, अरत (आते)=दुःखी, टाकुर=स्वामी, चेतो=सेवक ।

(५) सिखायन=शिक्षा, सचेतो=प्रातःकाल, शीघ्र, समित=यका हुआ, निचेतो=निवारण ।

(६) काको=किसका, वराय=चुन-चुन कर, पयान=पापाण, अदिलग, ग्राव=बालनाकि, विअय=यमज्ञानु न नोनक बुद्धवां पेक ।

(७) नसानी=नष्ट करदी, सिरानी=समाप्त हो गई, खसै हीं=जाने दूँगा, छोडूँगा, धनिर=सुन्दर ।

(८) सून्य=आकाश, रविकरनोर=सूर्य की किरणों की जल, मृगतृणो, मकर=मगर, प्रसे=खाता है, जुगल=दोनों, संसार और ब्रह्मा

(९) कम=कैमे, मृया=भूड, संसृति=सृष्टि, संसार, कीर=तोता, संमत=अनुकूल, में मोर=माया ।

(१०) जानक=रूप, वैय, मन्नि=साक्षी, प्रमाण, मने=मना कर दिया, रोक दिया । जगमनि=वेदों ने ।

(११) हीं=हृदय, हम हम करि=अहंकार के यश होकर, वनि-वादि=स्त्री इत्यादि, पामर नीच, दुर=मानसुरी इच्छाएँ ।

## राम वन वास

(१) कागर=तोते के प्रारम्भ में प्राने वाले कोमल पंख, जो समय पर स्वतः झड़ जाते हैं, श्रौष=अयोध्या, ब्याऊ=बयोही, पयिक ।

(२) अजाबुर=बकरी का खुर, तटिनी=नदी (यहाँ गंगा), कपरे=किनारे ।

(३) कटि=कमर, परसे=झूने में, तरनी=नाव, चरनी=गृहिणी, स्त्री, बरु=चाहे ।

(४) पात=पत्तों का दोना, छरपी=छरपी, मडुनो, चारे-चारे=छोटे-छोटे, वाद=विवाद, भगडा ।

(५) रल=इच्छा, बाल=बालक, असरानी=मोती, हेरि-हेरि=देख-देख कर ।

(६) कनी=बूँदें, मधुगणर=कोमल प्रोठ, चारु=सुन्दर ।

(७) परिखो=प्रतीक्षा करो, पसेऊ=रसीना, पलारिहीं=घोड़ों की भूमि=गर्म धूल, डाटे=कुनजे दूर, अन=पकावट, नाइ=रति ।

(८) तल=तरकम, सपसन=बनुप, मुशी=सुन्दरि ।

(९) गाने=सिक, भरे हुट, लाहु=ज्ञान, वरग=तालाब ।

(१०) चित्त=देवकर, लोल=चञ्चल, कमान=पनुप, तुनतारे=शोकावर कर्ता है, निरंग=तरकम । (११) गपक=गण, मृगवा=शिकार । नरै=वक्रित होने हैं, केनोपुव=। पु, गीगारक=छापदेव ।

(१२) रिप=विद्यावत् श्रेय, गरी=दूरी, कव=कमल ।

## सेनापति

१ लचित=रुढ़ी हुई, सुतह=कल्पवृक्ष, षाटं=रुढ़ी हुई, प्रिय  
 आगम=पति का आगमन । इंदन=पालन करने वाली । (२) आगम=  
 दुर्बोध, तं हन=तं दण । अर्भग=शुद्ध, अखण्ड, सभंग=अखण्ड, दूय  
 दृष्टा, सो'ध=सो'धकर, शूद्रकर, गणकी करत है=चहते हैं, इच्छा  
 करते हैं । (३) पल=वाण की नोक परिणाम, प्यागै=माहस, पल=  
 तीर में लगे हुए, वात्य में धर्जित धनु । पंग. गुन=प्रसंवा, काव्यगुण  
 (श्रोत्र, प्रसाद, माधुर्य) श्रवन=वान । चाणघारी=धनुघारी । (४) पट=  
 दरवाजा, वस्त्र, घटी=कमी, घड़ी, मोर्ग=बिलासी, सर्प, कन-कन=  
 दाना-दाना, सुह=धंजूम । पू' पयान हं=जातेसमय, द्वारकाहृ=द्वारका  
 भी, किसी के द्वार पर, वैरुण्ट=वैणव, नईं आयु, मगतन=मङ्ग,  
 स्रियाए=पहनावा, नागि=रटन, दिवच=दिवसित, वेशरहित टिगमूँटना  
 (६) घाट=नदी किनारे का घाट, तलवार की घार, पानी=कल, श्राव,  
 चमक, रव=राज्य श्री, घूल, नीकीयै=भले प्रकार । अमील=सच्ची  
 भेष्ट, पतवारी=नाव के पीछे का त्रिकोणाकार अंग । ७) द्विबन=दातो  
 माहणो, धान=रंग, चागवर्ण । छ ति=वेद, धान, लागी श्रव लार है=  
 श्रव लार लगी रहती है, लार गिरती रहती है; कामिनियो पीछे लगी  
 रहती है । नाक=स्वर्ग, नासिग; कथन=यथन, भ्लेच्छ, श्रव न ।  
 सुगलीन=गलियो में, सुगली; कृण=काले, कृणचन्द्र; वेसौ=बाल,  
 विणु, वेशव; षहें=रंसाग. षहें नहीं । (८) मौ=भव, संसार ।  
 विसद=सुन्दर; स्वच्छ; वगन=वर्ण (अन्तर रंग; बानी=वाणी; वचन;  
 स्वभाव । सियरानी = सीता रानी; शीतल हुई । तीरथ = श्रवतार; तीर्थ ।  
 (९) रोजनामे = रोजनामचे । सेस = शेष नाग; बाकी । सहसवदन =  
 हजार मुख वाला; शेष नाग । सरि = बराबरी । पृत्रै = पहुँचता है । पुर =  
 लोक; नगर । कोटा = भाएदार । मुरति = स्मरण । बानियै = वाणी से;  
 शपनी क्विता द्वाय; पनिचे को, नाहु = पति, साहु = सेठ; बोदय ।

## श्रुतवर्णन

(१०) बरन बरन=अनेक रंग के । बन्दी=भाट । पुतुपन=पुष्पो;  
 (११) बुटब=एक बंगली पेड़ जिसके पुष्प ऐसे सुन्दर होते हैं । घन=  
 बहुत अधिक । फूल लाल=फूलों का समूह । अलि=मौरे । अहर=  
 अहर । जे धारक के भिन्न है=मौरे महलक के साथी हैं । मापव  
 महिना=चैत्र मास, द्विज=बन्दी, घोष=शरद, धाम=चन्द्रोपमा धाम-  
 देव । (१२) पेसु=पलाश, मसि=स्याही, ददन=जलाने के लिए, बरैला  
 परचाए है=बोदले कृष्ण रसके हैं, (१३) नाँकाने=लक्ष्मी का रस है,  
 तल=पृथ्वी के नीचे का भाग, ताल=आला, बसक=बीबरे, कुषा=  
 चूना, अरगबा=चन्दन, सार=उजम, ओष्ठ, तार=वृत्त अर्थात् मोती,  
 यासर=दिन, बराहवेणी=दराने की, सारे=शक्ति । (१४) दुधबो तराई=  
 वृष राशि का रस, भरनी=ताप, पंभी=परिध, धिरगत है=दधाम सेवे  
 हैं, धमका=उमस, पीनी=पवन मी, धारी=धूपको, बिरदत=विद्या रस है ।  
 (१५) दिनबर=सूर्य, लाग्यो है तबन=तपने लगा है, भूतली=पृथ्वी की  
 मी, सीरप=शक्तिता, टटक, संतलता=शक्ति रूपा लता । (१६) बारा=  
 शरीर, रैगत है=वर्ण है । (१७) रंगमाल=रंगों का समूह, विशाल=  
 दिग्ग सुन्दर, हाँस=हास, बरु=कामान, अलिद=हल इषार के, लाल,  
 हरे, पीले, हेम लगवारी=सोने की रँगो । घनाघन=बसने वाले बरस,  
 मरुत है=भरते हुए हैं, अंगना=शुभ, सं=के, (१८) टनदे=  
 तमके, तीर=बानी, कारमास मरि=चन्द्रमाल, कोपाट सं धार्तिक टक ।  
 (२०) बसद=बादल, हेत=वरेत, रपेट । एर=रुग्ण, को रस, पवि  
 पदार=रुग्ण के परंत, क्य=कामास । कंदर=कर्मर टप,  
 दिग्ग=दिग्गकते हैं, बसने=छाँटे, रूषा के माल=चूने से पुते हुए  
 माल, तूल=रुं, रशत=बाँदी, (२१) विद्यार्थी टटकदेती है, का=दठ  
 कप=कराष=करा नोचे । २२) बरापर=चन्द्रा, दुर्गत=दुर्ग,  
 कोविद=विद्वान्, छागरी=मदवार, (२३) धिताठ=एवं भी, भग=

भलाक, चासर=दिन, संक=भय, पंक्जिनी=कर्मलनी, (२४) तुपार=पाला, बुरार=भाण्डार, घन=मुज, टिगिफै=टिठार कर, चौस=दिन, छहसकर=सूर्य, बडाई=प्रशंसा, (२५) नाह=पति, अवरैलियत है=दिलाई देता है, गिलात=भोत जाता है । जिन=क्षण, तनमै=निक भी कलप=कल्प; ४,१२०,०००,००० वर्ष का समय जिसके अतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होना है । टिगती=उमाप्त होती । (२६) पाली=पाला, लालो परयो=चिन्ता हो गई । ताप्यो चाहै वारि कर=श्राग बला कर हाथ सेंकना चाहते हैं । गयो घाम पतराइ है=धूप हलकी पड़ गई है, सकोरिकर=उभेट कर, अम्बर=आकाश ।

## भूपण

### शिवाजी की दान शीलता

(१) साहितने=शाहजी का पुत्र- शिवाजी, प्रतिच्छन=प्रतिक्षण, घन=गण, समूह, गनै=गिने, गिनती करे, छादिन=चादशाहों, गरीमनवाज=दीनबन्धु । (२) भरन ही=पालन करते हो, गुनाह=अपराध, भृगु=एक ब्राह्मण शूरवीर, जिन्होंने विष्णु भगवान की छाती में लात मारी थी । (३) बलत=यश, गौरव, विदारि=विदीर्ण कर, दूर कर दीह=दीर्घ (४) तुगीगन=घोड़े, करी=हाथी, निहाल करै=तृप्त करे, कर्तै=श्रुतुप्रो में । (५) घनद=कुवेर, विनाय जात है=नष्ट हो जाते हैं । लिफे ते=रुष्ट होने से, खलक=ससार, अनेंग=अज्ञ रहित, अज्ञों की फाटना, दीशे=दान देना, संक=भय, तुनी=ससार, हुमै=सुरर, सुरन=सुन्दर अक्षर, सोना, लास=पेड़ों का रस, जिसके पचपूताना में चूड़े बनते हैं, रुसन=रुखे मनुष्य, वृद्ध, दार्य=हाथ, हाथी देत = तालिर्वा पंथिरे हैं, प्रशसा करने हैं, (६) काकनद=कमल, (१०) विनलायो = विचलित पर दिया । (११) वितान=चंदोवा, मण्डप, क्षिति=पृथ्वी ।

रक्त = चौकी, हेम = सोना, हवन = घोड़ा । (१२) सलील = पानीदार,  
मद से मरे हुए, पन्वथ = पर्वत, पोल = हाथी, टंक = थोड़ा, विंचित,  
(१३) नैसुक = विंचित, (१४) अभ्रभाडे = उन्नति न करना, चदा =  
इच्छित, हा = हाथ, दुग्ध, १५) अग्नाक = रेशमी वस्त्र, (१६) छ्मर =  
धूल, वगूरे = बचूले, वारहट, गरुरे = अभिमानी, (१७) मर्तग = राथी  
दीर्घ = दिव्य देवे हैं, वारन = द्वार पर, नैवाजे = कृपा-प्राप्त । (१८)  
वेप्राव = वातिहीन, कंठ, अग्र = पानी, गडकाव होत = डूब जाते हैं ।  
(१९) वाज = वस्त्री विरोध, रावहीन = बिना पैर का । कुनि आत्मन =  
संपूर्ण संसार, तीर = बाण, एक तीर मरि = एक जोगी दूर ।

## शिव-शौर्य

(२०) वारावार = समुद्र, हाँवनि = रच्छुणै, कामगापै, ऐल = गपूह,  
विश्वान = कृपाण, तलवार, विपण्य = परा रक्षित, मपवा = दूध,  
सपण्य = परा रक्षित, (२१) वैरत = मर्दि, भुत्वा = गडल, दराथ =  
सम्भी, मनो = भ गो, उदौ = उदय, सगह = पान । (२२) दुराग =  
दुष्ट, शत्रु, दार = स्त्रियाँ, अयाने = घोष, अमन = मच्छ, तनि-  
तमूना = संपुषी समुना, मलिःट = एक पर्वत, विठसे मनुना निवली  
है । (२३) मनके = दिले हुले, तुनुक = हाजीप, सपमान, बकि गहो  
वपवाद वमता रा, हाँक गहो = देरता रा, अला = उपाय, तारे =  
छाँतो की पुतली । (२४) टटत = प्रवरट, मपुपु = राज, परन =  
शत्रु, वसाँसी = बाण लीचते हैं । (२५) ववता = श्रीगङ्गेश्वर, वमीऊ =  
चमर, निदमि = निरादर वरदे । २६) रालमली = रालमली मन्त्र हैं ।  
राल = दुष्ट शत्रु, राणक = संसार, पन्वत है = मोघ करते हैं, प्रमार =  
पर, २७) वार = तन, दुर्गा, २८) छमाप = वेँजे, विववा गत  
करना कटिन है, रे = गे, राप = अभिमानी । (२९) मर्जिन =  
शत्रु, दवनी = मुक्तसामनी की मर्जिन, कलित = पुत्र, मँडू, (३०)



नरत = नाचता है, पतत = मरा हुआ है, घन = बहुत, धून = शक्ति, बल,  
 ढण्ड = युद्ध, (३०) विदद = विहट, अचन्न, गन्वरनके = गर्वधारियों  
 के, रलत हैं = नष्ट हो जाते हैं, ऐन = अत्यन्त, उल्लन हैं = उल्लङ्घित हैं  
 घारा = गाली, पारावार = समुद्र, (३१) भूधर = पशुध, जृत्य जृत्य =  
 मुरट के मुरट, भृकृष्टि चढ़ाई है = मोक्ष किया है, (३२) जारन = नीच  
 मनुष्य, गैर मिश्रित = अनुचित, बलकन लाग्यो = बड़ बढ़ाने लगा ।  
 नौरंग = औरङ्गजेर । (३३) मुगचान = मोरचा, रक्षापंक्ति, हला कियो =  
 घावा बोला, दावा बाँधि = घेरा डाल कर, भोट = समूह, ताव दै दै  
 मूँछन पै = मूँछे ऐँठ, ऐँठ कर, (३४) नाग = सर्प, हाथी, जूह = कुंठ  
 पुहृत = इन्द्र, गोल = मुरट, पछाँह = पश्चिम । (३५) कूरम = कश्यप  
 कछ्वाहे राजा, विदलिगो = विदोष्य हो गया, चिझरी = चिघाड़ कर,  
 कोलहू = वाराह मी, खगराज = गधड़ । भुजंग = सर्प ।

## घनानन्द

(१) जोग = संयोग, कोविद = निपुण, विद्वान, चाह = प्रेम,  
 सुच्छन्द = स्वच्छन्द, निर्मल, (२) छत्री = वृत्त हो कर, चौरै = पागल,  
 चक्री = चक्रित, जमी बाति = बकचाद करने लगती है, तक्री = देली,  
 रामभी, (३) हित = प्रेम, अनखि = क्रोधित होकर, रूठ कर, घरसा-  
 दरी = आलस्य करोगे, कोलां = इवनक, (४) दई = भगवन्, शोरिए =  
 हुआइए, गुन = ररणी, गुण, ज्याद = जिला के । (५) पन = प्रण,  
 नषकाय हाँ = नहीं टरूंगा, शक्ति नश हूँगा । दर = टावागिन, उदेग =  
 उदेग, दुःख, तचाप हाँ = तमाऊग, टेक = हठ । (६) निराब = परत  
 रहित, दुरी = छिरी दुरे, द्रुम = वृक्ष; वनक = मूर्ति, वेप, तिकाई =  
 म्मुरता । (७) गीन = गमन; दरकोरी बाति = दया का स्वभाव;

श्रमोही = निर्मोही; भूरि = बड़ा । (८) कोरिले = काँचले; भ्रष्टले; पैडनरे  
 = पीछे पड़े; कलायी = मोर; बजमारे = बजमारे; एक प्रकार की गाली;  
 (९) बान = खानी । धान = अन्न । (१०) जानपाम = सुबान कृष्ण ।  
 दीस्यो = दिखाई दिख । (११) परजन्य = बादल; दूसरे के उपकार के  
 लिए उत्पन्न होने वाला । बभारय = यथार्थ; वास्तव में । दरगो = दिखाई  
 देते हो । निधि = समुद्र, जीवन-दायक = जीवन दान करने वाले; बल  
 देने वाले । परसो = शर्या करो, अनुभव करो, शिक्षावी = विश्वासपाती  
 (विद्वद् अर्थ में) । (१२) ही = र्था । चावान = चाव से; उमंग से;  
 दुलदाई = दुःख मरी (१३) अनग = कामदेव; रिभ्रतार = प्रसन्न होनेवाले  
 (१४) पति = लज्जा; छानन का = दुर्बला का; निधि = माहदार । (१५)  
 गहन सो गहिवो = प्रदृष्ट छ लग गया, अत्यन्त पीड़ा हुई; बंदिन =  
 लहरों । हेजो = मल्लो; दरियो = बज गया; मारिनो = मरी हुई; दुषी;  
 (१६) चादि = देख कर; चिादो = दिखाता; चोरनो = उत्तम उमंग;  
 मयंक = चन्द्रमा । (१७) सावन = नियम तय; नैशुक = किंचित (१८)  
 अचरेखो = चित्रित किया; समभा; अनलेले = अन्न गिनती; अगणित;  
 (१९) बाय = हवा; पारत क्या नहीं = भरता क्या नहीं ? (२०) बरिपै =  
 वही; बापनी = जीवन देने वाली । (२१) छोलार = उपला; छिडिजा;  
 छी है = छुयेगा; लो हे = लेगा । (२२) लावन = लौवन, नेत्र;  
 अयची = आराधना करो, नून = काटे; दुग्दरवी । (२३) प्रसाधन =  
 असीधु; अलजन; नग = नियम, चादि = देख; चोरित = बराब;  
 अयगादि = स्नानकर; हूर । (२४) आलगत = आँसू; थाली; चाद  
 आलगत = प्रेम के रत्न । (२५) खरे = सच; अरयनि भरे ई =  
 आतुर हो रहे हैं, वचन = मरणा. विश्वास. निदान का = अन्त में.  
 बित = बनी हैं. वचन गी क = भागकर दोहरा ।

## सूर्यमल

(१) सट्टणी=सख है, सवरी=सारी, दाह=जलन, बलप=कंकण, चूडा, नाह=पति ।

भावार्थ—हे सखी ! मुझे और सब सख हो सकता है, पर पुत्र का मेरे दूध को और पति का चूडे को लबाना—ये दोनों समान रूप से दाहकारी हैं ।

(२) खल=यत्रु, मोतोहल=मोती, नाह री=पति का ।

भावार्थ—हे सखी ! यदि शत्रु युद्ध से भाग गया हो तो मोतियों से घाल सजा ला, (जिससे प्राणनाथ की आरती उठारूँ) और यदि अपने ही दल के लोग भागे हों तो प्राणनाथ का साथ मत विछुड़ने दे । (सती होने की सामग्री प्रस्तुत कर )

(३) हयलेवे=याणिग्रहण के समय, बिलगगा=लगने से, चुभने से, माय=माता, हेकलो=घरकेला, मो=मेरा ।

भावार्थ—याणिग्रहण के समय उनकी हयेली पर के तलवार के मूठ के निशान मेरे हाथ में चुभने से हे माता ! मैं सन्नत गई कि युद्ध में अकेले हो जाने पर भी वे मेरे चूडे को नहीं लजायेंगे ।

(४) समली=चील, मख=ला, बंबुक=गोदड़, म=मत, बाह=बा, पण=प्रण, घण री=पत्नी का, किम=किस प्रकार, पैल ही=देलेंगे, विगुडा=विनष्ट हुए, रंहत, बिना । नाह=पति ।

भावार्थ—हे चील ! और सब अज्ञों को तू निःशंक होकर खा, पर गीदड़ों के पप का अनुसरण मत कर (नेत्रों का मत निकाल) । क्योंकि यदि तू नेत्र निकाल लेगी तो मेरे पति बिना नेत्रों के अपनी स्त्री के सती होने के प्रण का पालन किस प्रकार देखेंगे ।

(५) घणी=पति, जैत=जीत, नीराजण=आरती, वाधाधियो=उतारी, कुमेत=घोड़े का एक रंग जो स्वाहो लिये लाल होता है।

भावार्थ—अपने पति को विजय हुई सुनकर पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और हाथ से थपथपा कर कहती है कि हे कुमेत ! तुझ पर बलिहारी है।

(६) दाभियाँ=दोभूने से, छूने से। लिया=जो। चाव=उमंग।

भावार्थ—वीर सती रमणी कहती है—हे सरदारो ! आप भूल कर भी आग पर पैर मत रखना। इसके छू जाने से राख ही बचता है। इसका आलिंगन करने को तो जियाँ ही लालायित रहती है।

(७) असि घावण=सिकली गरनी। भटक=भटक। भटकताँ=बार करते हुए।

भावार्थ—हे सिकलीगरनी ! मैं तेरे पति पर अनेक बार न्योछावर हूँ कि उसने तलवार को धार इतनी तेज करदी कि युद्ध में धार धरते समय हाथ को एक भी भटक नहीं लगा।

(८) मो=मेरे। सह=साथ। दाह=जलने के। उरठां=स्वर्ग। धर=पृथ्वी। रजवट=उज्रपूती, चात्र धर्म। राह=रीति।

भावार्थ—हे सखी ! मेरे सती होने के समय सुन्दर टोल ममाना। क्योंकि तू तो चात्र धर्म की इस उलथी रीति को जानती है कि इसमें पृथ्वी पर बीज बोया जाता है और स्वर्ग में खेती फलता है।

(९) धरे=घर में, काय=स्वो, बलेवा=बलने के लिए, हूलवे=सालायित हो रही है, मरेवा=मरने के लिए।

भावार्थ—घर पर सास कहती है कि आब अचानक इतना हर्ष क्यों है ! ( कश्चिद् यह नहीं जानता कि ) उसका पुत्र मरने को आ रहा है और पुत्र कभी सती होने को लालायित हो रही है।

(१०) अन्नको=उदत, उदएद, बाग=लगाम ।

भावायं—हे सखी ! मेरे उदएद पति को तो देख जो कि घोड़े की लगाम पकड़ कर अवेला ही शत्रु की सेना को इस प्रकार नष्ट करता जा रहा है, जिस प्रकार कोई शराबी शराब के प्यालों को खाली करता जाता है ।

(११) दीह=दिन, मिचै=बंद हो जाते हैं, इकलै=तलकारे, सीह=सिंह,

भावायं—बिल सिंह को सामने मुनकर ही दिन काला-पीला दिखाई देने लगता है, पैर पीछे पड़ने लगते हैं, छाती घड़कने लगती है और आँखें बन्द होने लगती हैं, उस सिंह को तलकारने का साहस कौन कर सकता है ?

(१२) नायण =नाई की स्त्री, काल =कल, जंग =युद्ध, धारों लागी जै =तलवार की धार के नीचे आनायें, घण =बहुत ।

भावायं—हे नाइन ! आन्न पैरों में मेंहदी मत लगा, क्योंकि कल युद्ध मुना जाता है । यदि पति तलवार के घाट उतरें तो ( सती होने के समय ) खूब रंग देना ।

(१३) ऊभी =खड़ी, गोण =गवाक्ष, भरोखे, अवेखिपी =देखा, पेजारो =दूसरों का, विपक्षियों का, दल =सेना, सेर =प्रबल, धव =पति, खीधी =ले लिया, नातेर =नाटियल ।

भावायं—भरोखे में खड़ी हुई क्षत्राणी ने देखा कि विपक्षियों की सेना प्रबल है । अतएव पति के मरने का समाचार न मुनकर भी इसे अक्षय्य भावी मानकर पत्नी ने सती होने के लिए नाटियल हाथमें लेलिया ।

(१४) आणी =लाई गई, घरेह =घर पर, बालही =प्यारी, मूक =मुझे, जीव हूँ =जीवित रही ।

भावायं—( विवाह के समय ) स्वामी स्वयं आगे होकर मुझे पीछे करके लाये थे । लेकिन यदि ( पति के मरने के बाद ) मैं जीवित रही तो ( सती होने के समय ) उन्हें मुझे आगे करना पड़ेगा ।

(१५) भव = संसार, लोक; भेटेस = भेंट होगी।

मावार्थ—हे दंत ! आपने अच्छा किया जो घर भोग आये। अब आप मेरा वेध धारण कर लीजिए। अब इस लज्जित चूड़ियों वाली पत्नी से तो आपकी दूसरे लोक में ही भेंट होगी।

(१६) की = क्या, हणियाँ = मरने पर, बलती = बलती, घण = अति, नेहै = प्रेम, लीघो = लिया।

मावार्थ—हाय ! तुमने घर आकर क्या किया? यदि आप मारे जाते तो मैं तुम्हारे साथ सती होती। ( पति ने उतर दिया ) हे प्रिये, तुम्हारे प्रेमाधिक्य ने मुझे सुद्ध क्षेत्र से बलती ही बुला लिया।

(१७) गिया = होगये, बघियो = बढ़ गया, जाल = भ्रंश।

मावार्थ—हे पति ! तुम्हारे बेटों के पुत्र होकर घर में जाल बढ़ गया है। काल तुम्हारी आयु देखकर लुभा रहा है। अब तो सुद्धसे भागना छोड़ दो।

(१८) किय = किस।

मावार्थ—हे पति ! अब आप ये मेरे आभूषण और मेरा वेध धारण कर लीजिए। मैं तो योगिन हो चली। अब आप के किस काम की ! आपका मेरी चूड़ियों का खर्च भी मिट गया।

(१९) मुपेती = सफेदी, बालों का सफेद होना; की = क्या; घण = अति; घाते = लेते हो, बालते हो।

मावार्थ—हे पति ! बालों की सफेदी देखते हुए भी क्या और खीने की आशा है ! आपके जो हाथ मेरे कानों पर रखते थे, उनसे आप जैसे मुँह में तिनका लेते हो ! ( शत्रु से दीनता दिखाते हो )

(२०) अंगियाँ = चोली; आसीवे = लाना; मोरू = मुकरी; दूय = दूनी।

मावार्थ—हे दर्शिन ! अब मेरे निचे नम्बी कुर्तियाँ सींहर लायाकर; मेरे सघरापन को पोशाकें न राने से जो तुम्हें घाटा होगा, उसकी पूर्ति मैं तुम्हें दूनी सिजाई देकर करूँगी ।

(११) मुवा = मेरे हुए; किसा = पैसा; बणाय = शृंगार ।

मावार्थ—हे सखी मण्णिहारी ! चली ब्या । अब मेरे घर पर मत आना । क्योंकि मृतक के उमान ( कपर ) पति घर भाग आए हैं । विघनाश्री को शृंगार पैसा ?

(१२) गंधण = गंध की स्त्री, इत्र, तेल बेचने वाली; कूकी = चिल्लाई; भूँटा = अशुभ; भौण = घर; चलण = चलने के लिये । अतर = इत्र ।

मावार्थ—गंधिन चिल्ला उठी—गजर होगया ! उसका रण से भाग कर घर आना मेरे लिये तो बड़ा बुरा सिद्ध हुआ । उसकी पत्नी ने सती होने के समय लगाने के लिए जो महुँगा इष निबलवाया था, उसे अब कौन खरीदेगा ?

(१३) भ्रूण = गर्भ; भाव = वीरता के भाव; नालो = नाल; वाढ़णरी = काटने की; जण्णियो = पैदा किया हुआ; साय = बालक ।

मावार्थ—मैं उन रानियों पर न्योछावर हूँ जो गर्भ में ही उन्हें वीर भावों की सिद्धा देती हैं कि जन्म लेने ही बालक नाल काटने की छुरी को लेने के लिए झपटता है ।

(१४) जॉचा = बच्चा; हटै = बें; तापणें = तापने के लिए । घो = पुत्री; टगलाय = टटकी लगाकर ।

मावार्थ—मैं उन रानियों पर बलिहारी हूँ जो गर्भ में ही बालिकाश्री को ऐसा सिद्धा देती हैं कि प्रयुक्ति यः में बच्चा के तापने की श्रंगीठी की श्रंगिन हो एकदम देगकर दर्पित होती है ।

(२५) लखीजै = देखिये; नबी = नदी; फिरती छाहं = नाटवानशरीर;  
मुढ़ियोँ = मुड़ने पर, पीठ दिखाने पर; गौदबो = तकिया; बले = फिर ।

भावार्थ—हे पति ! अपने और मेरे दोनों कुलों को देखना न कि अपनी फिरती हुई छाया को । यदि आप युद्ध से पीठ दिखाकर भाग आये तो सिरदाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, पर पत्नी की मुजा तो फिर नहीं मिलेगी ।

(२६) ऐली = सखी; बी = क्या ।

भावार्थ—हे सखी ! उस आश्चर्य की कथा तुम से क्या कहूँ ? मैं तो अपने पति पर बलिहारी हूँ । जिन दो हाथों को मैं घर में देखती हूँ कि रण में हज़ार होजाते हैं ।

(२७, मोला = मूर्ख; अंत = मृत्यु; पहुँटे = पहुँचेगी; ऐण = पर ।  
बीबी = दूसरी, अघिक; दीठाँ = दिखाई देगा ।

भावार्थ—रे मूर्ख ! तू किस डर से भाग आया ? क्या घर भाग आने से मृत्यु यहाँ तक नहीं आ पहुँचेगी ? यहाँ मरने से यह दूसरी बात होगी कि बेचारी कुल बधू को लज्जा से नेत्र नीचे करने पड़ेंगे ।

(२८) बरज = रोकें; घावाँ = घायल; पावहिँत = चरणों में ।

भावार्थ—टोल धा बखाना बन्द कर । सब को अपने अपने पर भेष दें और सती होने के नासिद्ध को भी घर में रखा दें । घायल होकर पति पधार आये हैं । उनके चरणों में प्रणाम है ।

(२९) बाल = बालक; बापरी = पिता का; लहे = लेते हैं ।

बंझल = विद ।

भावार्थ—युद्ध तो राजपूतों की होती है, इसे पौर बालक नहीं भूलते थे कि वारद वरु की आयु में ही अपने पिता के पैर का बहाला लेते हैं ।

(३०) अटै = यहाँ; उटै = वहाँ, उठ लोक में; मरिहिदाँ = मैं;

कम = कम ।



भावार्य—अगर पर मरने वालों को इस लोक में सुदृश और परलोक में ऐश्वर्य प्राप्त होता है और घर पर पड़े-पड़े मरने से यमरोज नर्क में ले जाता है ।

(३१) पदल = पदले; मिले = मिलन; क्रिय = कसने; क्रीषा = क्रिया; बीजल = तलवार; साहे = लेकर; आय = लिये ।

भावार्य—प्रथम मिलन के समय पत्नी ने पूछा कि हे नाथ ! हाथ में ये कठोर चिन्ह किसने किये ? पति तलवार पकड़ कर बोला—इस ढाकिनी ने और पृथ्वी के लिए ।

(३२) मंगली = मांगलिक. शुभ. चंबरी = विवाह मंडप. वंबरी = कुमारी ।

भावार्य—विवाह के समय मांगलिक टोल सुन कर वर की मूँछें भाँड़ों से जा लगी । यह देख कर कुमारी ने विवाह मंडप में ही जान लिया कि पति मृत्यु का प्रेमी है ।

(३३) प्रीव = गर्दन । विराह = प्रशंसा. परयांता = विवाह समन; ओष्ठो = कम ।

भावार्य—बिना गर्दन मोड़े देखना और वीर शत्रु की प्रशंसा करना इन दो बातों से विवाह के समय ही पत्नी ने जान लिया कि पति की आयु योड़ी है ।

(३४) पेटी = सद्दुक; मीड़ = सेहरा; मार. पड़वै = शयन गृह में । दीठी = दिलाई दिया ।

भावार्य—शयनागार में सद्दुक में उनका सेहरा रखते समय उनके पाव जो मैंने देखे; उनसे ही हे सखी ! मैंने समझ लिया कि पति देव कुट्ट दिन के ही मेरमान है ।

(३५) खावे = खड़े पर; ब्रह्म-बन्धु = प्रत्येक मनुष्य; हन कोई, धड़े = चलते हैं; कस = फस कर; भडा = योद्धाओं की; वह प्रहिवा = बजने पर; प्रवाल = नगाड़ा ।

भावार्थ—मन कोई तलवार फसकर भाँघते हैं और ऐसी शब्द से चलते हैं; भानों सारी शक्ति उन्हीं के कंधों पर है । परन्तु शूर और कायर की परीक्षा तो युद्ध के नगाड़े बजने पर ही होती है ।

(३६) साँह = सिंह; बाबी = बहलाओ; दीन = दरिद्र, दीइ = दिन हीयत = पंजा; पाई = गिरता है, हाथियाँ = हाथियों को, भद = योद्धा ।

भावार्थ—सरदारों ! तुम सिंह बदलाने के अधिकारी नहीं हो, क्या कि तुम दीन जन पर दिन गुजार रहे हो । सिंह बदलाने का अधिकारी तो वही बोर हो सकता है जो हाथियों को अपने पंजे से गिरता है ।

(३७) छानै = चुपके से, बिय = निष्ठ, देसकै = देश में ।

कायर की छुपके से अपने पति को छिपा कर कहती है कि हे भगवन ! निष्ठ देश में तिर रिक्त हो, वह देश कभी मत दिखना ।

(३८) दीयो = निन्दा करो । ईली = देखो, एह = यह, मरल = मरिता ।

भावार्थ—हे पुरुषों ! निन्दा की निन्दा मत करो । यह तो संगति देखना चाहिए । धीरों के घर में धीर मरिता दिखेगी और कायर के घर में कायर ।

(३९) नधी = नहीं, अरियाँ = अनुषो से, लोंपो = लिखा ।

भावार्थ—हे धरणी ! पति के जाले का कर्षा अनुष्ठा की शक्ति नहीं मिली । और अब धरती होते समय मैंने उन्हें गोद में लिया तब भी उनकी सूँड़ें पैठों ही टूटें थीं ।

(४०) रसा = लुप्या, हातारिया = हाथियाँ, तुलधर = तुम्हारा; दूँ = माय = माता ।

भाचार्य—अपनी भूमि किसी को न देना. इस भाव की लोरियाँ गाती हुई माता अपने पुत्र को झुना रही है और झूले में ही उसे मरने की महत्ता सिखा रही है ।

(४१) बाड़े = घर के. बासड़ी = निवास. लखाँवे = खनकती रहती है. लाग = खड्ड तलवार. ऊटा = नखोटा. नवयुवती ।

भाचार्य - हे सखी ! देरी के घर के पास इसका निवास है । सदा तलवार बजा करती है । इस नवयुवती के भाग्य में मुदाग कितने दिन का मेहमान है !

(४२) हूँ = मैं. बाप = आलिंगन; हाकी = शोर. हृलसै = हर्षित होते हैं; कौच = कवच. प्राय = मैं ।

भाचार्य—हे सखी ! मैं एक आश्चर्य की बात तुमसे कहती हूँ । वे घर में तो मेरी भुजाओं में समा जाते हैं. किन्तु युद्ध की घुफार मुनते ही वे भरण प्रेमी इतने प्रसन्न होते हैं कि कवच में भी नहीं समाते ।

(४३) दुरंग = दुर्ग. किल्ला. कटणी = निकलना. विणंट्टा = बिना. नेक = अच्छा ।

भाचार्य—दुर्ग में से शरीर का निकलना और शरीर में से जीव का निकलना दोनों एक ही बात है । तब तो किले में से भरपर निकलना ही अच्छा है, जिससे नाम तो रहे ।

(४४) गँद = गण्ड. हाथी. गिवल = गँदे. गिडगब = शूकर. बुकन = गौड. तारगडा = सामर्थ्यवान. मंडे = मचा रहे हैं ।

भाचार्य—त्रिभुवन में हाथी; गँदे और बड़े बड़े शूकर भी भूल कर भी नहीं जाते थे. उसी वन में आज गौड भी शक्तिवान बने ऊधम मचा रहे हैं ।

## परिशिष्ट २

इस संग्रह में प्राचीन कवियों की तीन काव्य-भाषाओं की रचनाएँ संकलित की गई हैं। विद्यावियों की सुविधा के लिए उनकी स्थूल परिचय और पहचानने के कतिपय नियम यहाँ दिये जाते हैं।

### (१) अवधी

जब अथर्वश भाषाओं का काव्य के क्षेत्र से घीरे-बीरे पलायन प्रारम्भ हुआ, तब उनका स्थान ग्रहण करने वाली भाषाओं में अवधी प्रमुख है। अवधी बोली का क्षेत्र लखनऊ और फैजाबाद का प्रदेश है। साहित्य में इस भाषा को प्रतिष्ठित करने वाले सूफ़ी कवि थे,। मलिक मुद्गमद जायसी ने प्रामोद्य अवधी को काव्य की भाषा बनाया। गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसे साहित्यिक रूप देकर अपने अजर काव्य राम परित मानस की रचना की। प्रथम काव्य की रचना के लिए यह भाषा बहुत उपयुक्त है। दोहा, चौपाई और बरवै छन्दों में यह खूब फ़सती है।

विशेषताएँ—

(१) उत्तम पुरुष 'गौ' मध्यम पुरुष 'वू' और अन्य पुरुष 'मो' का प्रयोग होता है। विभक्ति युक्त होने पर उत्तम पुरुष में 'हौ' के स्थान पर 'मै' के रूप ही चलते हैं—

(२) सम्बन्ध वाचक 'जो' और नित्य सम्बन्धी 'सो' के रूप में विभक्ति युक्त होने पर 'जेहि' और 'तेहि' हो जाते हैं:—

“राजा बंदी जेहि के सौंपना । गा गोरा तेहि पहुँ अगमना ।”

(३) प्रश्नवाचक 'कौन' का रूप 'को' होता है । संबन्ध कारक में 'का' रूप रह कर 'कर' विभक्ति जोड़ी जाती है । यथा-

“खेल डार पहुँ का कर होई ।”

“कँवल न रहा और को बेली ।”

(४) कर्ता कारक की विभक्ति 'ने' का प्रयोग नहीं मिलता शब्द को ऐकारान्त कर देने में भी काम निरुल जाता है । यथा-

“गोरा-बादल राँडे काढे ।”

“गोरे साथ लीन्ह सय साथी ।”

(५) कर्म कारक में 'हि' प्रत्यय का प्रयोग होता है:—

“राजहि चली छोड़ा वै ।”

(६) सम्बन्ध कारक की विभक्ति के 'कर' 'के' 'के' तीनों रूप मिलते हैं:—

(१) “पदमावति कर सखा विमान् ।”

(२) “सख भँहार के साहि स्यो कूँजी ।”

(३) “पदमावति के भेष लोधारू ।”

(७) सामान्य भूतशाल के रूप यथा खड़ी बोली की तरह ही होते हैं:—

“खोरह सै चंडोल चलाए ।”

“रालहि चली छोड़िषे ।”

(८) सामान्य वर्तमान काल में 'हि' प्रत्यय लगाया जाता है:—

“चहुँ दिशि चवंर कहि सब ठारा ।”

“हीरा रतन पदारथ सुनडि ।”

(९) भविष्यत् काल की क्रिया में 'व' प्रत्यय जोड़ा जाता है:—

“वरय सेवकाई ।”

(१०) विधि आदेश या प्रार्थना सूचक क्रिया में 'वहु' प्रत्यय लगता है:—

“तौ पठवहु कैलास”

“पहजे दरस देखावहु ।”

(११) 'य' के स्थान पर बहुधा 'ज' का प्रयोग होता है:—

“सत जोजन प्रमाण सै धारौ ।”

(१२) सकारान्त 'य' बहुधा 'ठ' हो जाता है:—

“दा पद्धिताय आव लो पुनी ।”

## ब्रजभाषा

यह शौरसेनी अपभ्रंश से बनी हुई एक छोटे से प्रदेश की बोली है, जो अपने माधुर्य के कारण काव्य-रचना में प्रयुक्त हो कर 'भाषा' कहलाने लगी। इसका क्षेत्र आगरा, मथुरा, मरत पुर, करौली के आसपास का भूभाग है, जो 'ब्रज' कहलाता है। श्री कृष्ण भगवान ने इसी भूमि की मिट्टी में खेल-खेल कर माता यशोदा से माखन रांटी माँगी थी और अनेक लालाएँ की थीं। इस बोली को काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय कृष्ण भक्त कवियों को ही है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी से लेकर आज तक इस भाषा में अनेक कवियों ने काव्य-रचना की है। सुर, तुलसी, रसखान, नन्ददास, आदि कवियों ने भक्ति रस पूर्ण तथा विहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, बनानन्द, सेनापति आदि ने शृंगार-परक रचनाएँ करके ब्रजभाषा की शक्ति और व्यापकता का परिचय दिया। भूपण, सुगन और लाल ने वीर रस की कविता इसी भाषा में की। ब्रजभाषा सब रसों का रचना के उपयुक्त है, किन्तु विशेषकर शृंगार और करुण रस इसमें विशेष फवता है। कवित्त और सबैया छन्द तथा मित्र मित्र राग-रागनियों के पद इसमें विशेष सुन्दर बन पढ़ते हैं।

### पहचान और विशेषताएँ —

(१) इ और उ के बाद अ का उच्चारण ब्रज को प्रिय नहीं। संधि करके य तथा व कर दिया जाता है, यथा—

मिआर से ह्यार

कृआँर से क्वार

(२) प्रत के लघारण में वर्म के चिन्ह 'ओ' का लघारण 'कौ' के समान, अघिठारण के चिन्ह 'मै' का लघारण 'मै' के समान हो जाता है ।

(३) साधारण क्रिया के तीन रूप होते हैं—

(क) 'नो' से अन्त होने वाला, जैसे—करनो, लेनो, देनो ।

(ख) 'न' से अन्त होने वाला, जैसे—आवन, जान, लेन, देन ।

(ग) 'यो' से अन्त होने वाला, जैसे—करयो, लेयो, देयो ।

(४) सर्वमक भूत कालिक क्रिया का लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं, यथा—

१—हैं सखि नई चाह इक पाई ।

२—मैया रो, मैं नहीं दधि रगयो ।

(क) क्रियाओं और सर्वनामों में कभी-कभी पुराने और नये दोनों रूप पाये जाते हैं, यथा—

( पुराने )

( नये )

क्रिया— करहि, करहु

करैं, करी

सर्वनाम— जिनहि

जिन्हें

जाहि

जाको

ताहि

ताको

(६) अवधी क्रियाओं के 'व' में 'ई' मिला देने से बिधि क्रिया होजाती है, जैसे—घायरी, घायपी, जानपी आदि ।



- (७) सर्वनाम उत्तम पुरुष कर्त्ता कारक—मैं, हौं (बहु०इम)  
 " " कर्म कारक—मोको ( ,, इमहिं)  
 " " संबंध कारक—मो ( ,, इमारो)  
 " मध्यम पुरुष कर्त्ता कारक—तू, तैं ( ,, तुम)  
 " " कर्म कारक—तो को, ( ,, तुमको)  
 " " संबंध कारक—तेरो ( ,, तुम्हारो)  
 " अन्य पुरुष कर्त्ता कारक—वह, सो ( ,, वै, ते)  
 " " कर्म कारक—वाको, वाहि, ताको,  
 " " संबंध कारक—जाको । ताहि

(८) व्रजभाषा के कुछ विशेष कारक चिन्ह ये हैं—

दत्ता—ने	दरण—सों, तैं
कर्म—कों	सम्प्रदान—कों
अपादान—तैं	संबंध—को
अधिकरण—मैं, मों, पै	

(९) संज्ञाएँ, विशेषण और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम प्रायः ओकारान्त होते हैं—

घोरो, भगगो, छोटो, बड़ो, अपनो, मेरो, तुम्हारो ।

(१०) सर्वनामों में कारक चिन्ह लगाने के पहले, अवधी भाषा की तरह 'हि' नहीं लगता—

अवधी	व्रज
काहिको	काको
जाहिको	जाको
ताहिको	ताको

## डिंगल

नागर या शौरसेनी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा का जन्म हुआ, जिसके साहित्यिक स्वर का नाम 'डिंगल' है। राजस्थानी भाषा का डिंगल नाम कर और ग्यों पड़ा, इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई इस शब्द को उररचित 'उगल' शब्द से मानते हैं तो कोई 'डिंगल' शब्द को अनियमित और गंवार भाषा का शीतक समझते हैं। कुछ विद्वान् 'डिंगल' के अनुकरण पर उसके विरोधी गुणा से युक्त भाषा को 'डिंगल' कहने की कल्पना करते हैं। जो हो, यह तो सर्व विदित है कि विद्य प्रकाश हिन्दी-साहित्य में ब्रजभाषा और अवधी का पर्याप्त भाण्डार है, उसी प्रकार 'डिंगल' का भी।

'डिंगल' विशेषतः चारणों की भाषा रही। राजस्थान की भाषा होने और राजस्थान में शताब्दियों से कृत्रिय राजाओं की एकत्र सत्ता होने के कारण इसमें विशेषकर वीर-काव्यों की रचना ही हुई। चन्द बरदार, पृथ्वीराज, दुर्गा, बाँकीदास, सूर्यमल आदि अनेक महाकवियों ने इसके भाण्डार को भरा।

### विशेषता—

(१) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं 'ल' और कहीं मराठी की तरह मूर्धन्य 'ल' होता है। यह 'ल' जब किसी शब्द के बीच में आता है, तब उक्त स्थान पर 'ल' लिख देने से विशेष अन्तर नहीं पड़ता। यथा—

वाल—वनाज

काल—कालु

पुल—पुंश

वाल—वमदा

काल—कल, दूसरा दिन

पुल—सम्पूर्ण

(२) ङिगल की वर्णमाला में 'श' और 'ष' नहीं है। 'प' का प्रयोग 'ख' की तरह होता है और 'श' के स्थान पर 'स' ही लिखा जाता है। उच्चारण में उसे ठीक कर लिया जाता है।

यथा— 'अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर भरियाँ आय।'  
यहाँ 'सुजस' का 'सुजश' उच्चारण होगा।

(३) ङिगल में कारकों की ये विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं—

कर्ता	इ, उ	टोलइ, करइउ
कर्म	उ	सदेशइ, कलेजर
करण	इ	मुलि, कामिइ
सम्प्रदान	ए, नूँ, आँ	तव टोटे <u>मोनूँ</u> दया।
अपादान	हूँ, हूँत, हूँतो	<u>पावाँ हूँत</u> प्रणाम
सम्बन्ध	ह, हाँ, रौ	पण <u>धण रौ</u> किम पेखही
अधिकरण	इ, ए	<u>इवनेवे</u> ही मूठ क्णिण

(४) सर्वनाम ये काम में आते हैं :—

	कर्ण	कर्म	सम्बन्ध
उत्तम पुरुष	हूँ	मूँ, मूम	म्हारंड, मो
मध्यम पुरुष	तूँ	तुम्ह	ताइने
अन्य पुरुष	सइ	पइ	पइ, ए

संबंध वाचक जो, जु। जो, जू। जास, जास, जेइ, जे  
नित्य संबंध सोइ, सा। सोइ, सा। तास, तस, तेइ, ते

प्रश्न वाचक तथा अतिरिचय वाचक	}	कावण कवण, कुणमो, कोई कुण
------------------------------------	---	-----------------------------

(५) उगल में क्रियाओं के रूप कहीं अपभ्रंश, कहीं परिवर्तनो हिन्दी और गुजराती के रूप से मिलते हैं।

(क) वर्तमान कालिक 'टै' क अर्थ में 'झड़' प्रयुक्त होता है।

(ख) वर्तमान कालिक क्रियापद बहुधा इकारान्त होते हैं। यथा-- मरइ पलइइ भी मरई

(ग) मूल क्रिया के पीछे 'ढइ', 'यइ' तथा 'इइ' लगा कर सामान्य भूत काल के रूप बनाये जाते हैं। यथा, कहिउ (कहा) उहिउ (उड़ा)

(घ) भविष्यत् काल के रूप दो तरह से बनाये जाते हैं (१) मूल क्रिया के अन्त में 'सी' 'स्युँ' तथा 'स्यो' लगाकर (२) ला, ली तथा 'लो' लगाकर जैसे--

'मुईंपो लेसी फूण'

पूडेला (दूष जायगा)

(ङ) क्रिया के अन्त में इ, ई, अ, य, करि आदि प्रत्यय लगाकर पूर्व कालिक के रूप बनाये जाते हैं। यथा--

'आजको बाग उठाय'